समुद्र विज्ञान

लोकोपयोगी विज्ञान

समुद्र विज्ञान

ए. एन. पी. उमरकुट्टी

अनुवाद

डी. पी. पांडे

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

यह पुस्तक पुनर्निर्मित पर्यावरण-मित्र कागज़ पर मुद्रित है

ISBN 81-237-0671-5

पहला संस्करण 1993
पहली आवृत्ति 1995 (*शक* 1917)

Science of the Oceans *(Hindi)*

रु. 33.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

प्यारी मां

ए. एन. पी. जैनबा

की मधुर स्मृति में

विषय सूची

1

महासागरों का परिचय

महासागरों और समुद्रों के अध्ययन को समुद्र विज्ञान की संज्ञा दी गयी है। एक अलग विज्ञान के रूप में यह अपेक्षाकृत नयी विधा है। परंतु मानव अनादि काल से समुद्र से परिचित रहा है। वायु के समान जल भी मानव जीवन के लिए अनिवार्य था। सच तो यह है कि सबसे पहले जो बस्तियां बसीं वे बड़ी नदियों के तटों पर ही थीं। मानव सभ्यता सबसे पहले दजला (टिग्रिस), फुर्रात (यूफ्रीटीज), नील और सिंधु नदी के तटों पर ही विकसित हुई थी। लेकिन नदी तटों पर रहने वाले मानवों ने शीघ्र ही समुद्रों की विशालता का ज्ञान प्राप्त कर लिया, क्योंकि भूमि पर बहने वाली नदियां और नाले अंततोगत्वा समुद्रों और महासागरों में ही जाकर मिल जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि समुद्र तटों पर भी मानव सभ्यता ने अपने पैर जमाए। विशेष रूप से ऊष्ण कटिबंध और उसके आसपास के क्षेत्रों में मानव सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण भारत के तटों पर हजारों वर्ष पहले बस्तियां बस गयी थीं। सारे पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटों पर सभ्य और शांतिप्रिय मानव ने अपनी बस्तियां बसा ली थीं। इनमें रहने वाले लोग पड़ोसी देशों के साथ व्यापार करते थे। इसका प्रमाण तमिल के प्रारंभिक साहित्य में मिलता है और सारे दक्षिण भारत में जो स्मारक फैले हुए हैं, उनसे भी पता चलता है कि समुद्र के रास्ते दूसरे देशों से व्यापार कितना व्यापक था।

जो लोग समुद्र तट के समीप रहते हैं और समुद्र से परिचित हैं उन्हें पता है कि वह क्या होता है। लेकिन जो समुद्र से दूर रहते हैं, उन्हें समुद्रों के आकार और महत्त्व का कोई ज्ञान नहीं होता। उन्हें यह जानकर तनिक अचंभा हो सकता

है कि पृथ्वी के लगभग तीन चौथाई भाग पर महासागर हैं, भूमि तो पृथ्वी का कुल एक चौथाई भाग है। अंतरिक्ष यात्रियों ने अंतरिक्ष में यात्रा करते हुए पृथ्वी को देखा है और इस बात की पुष्टि की है। उन्होंने यह कहा है कि पृथ्वी तो पानी से भरा ग्रह है। अंतरिक्ष में उड़ान के समय अंतरिक्ष यात्रियों को पर्वतों की ऊंचाइयां उतनी नहीं दिखीं जितनी कि महासागरों के नीले जल की चमक, जो दूर-दूर तक फैली हुई थी। हाल ही के समय में मानव ने समुद्र के महत्त्व को समझा है। इस कारण समुद्र और उसमें छिपे पदार्थों का अध्ययन बड़े जोर-शोर से होने लगा है। भारत में भी विद्वान हों कि जनसाधारण, सभी का ध्यान समुद्र की ओर गया है। अब समय आ गया है कि हम सब इस बात को समझ लें कि हमारे देश के आसपास जो समुद्र हैं, उनका कितना महत्त्व है और अपने देश की समृद्धि और कल्याण के लिए हम उनका उपयोग करें।

समुद्र विज्ञान कोई एक आधारभूत विज्ञान नहीं है बल्कि कई विज्ञानों का समूह है। इस विज्ञान को महासागरों और समुद्रों के परिवेश के सर्वव्यापी विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें कई पदार्थगत विज्ञानों और सैनिक विज्ञान का समावेश है। समुद्र विज्ञान में समयानुसार किसी भी मूल विज्ञान के सिद्धांतों और व्यवहारों का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन इस सब को समेकित करके ज्ञान की एक विधा का विकास किया गया है जिसके माध्यम से भूमि के तीन चौथाई भाग पर समुचित प्रकाश डाला जा सकता है। समुद्र विज्ञान में बहुत खर्च होता है, क्योंकि इसके माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के लिए तट से बहुत दूर जाना पड़ता है। जिस प्रकार अंतरिक्ष के महत्त्वपूर्ण पहलुओं के बारे में अध्ययन अंतरिक्ष में ही जाकर किया जा सकता है, उसी प्रकार समुद्र विज्ञान संबंधी अध्ययन समुद्र में, उसके तल पर या उसके जल में पैठ कर किए जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि कई विश्लेषण तो तट पर बनी प्रयोगशालाओं में किए जा सकते हैं और वहीं पर कुछ प्रमेयों की प्रभावोत्पादकता को प्रयोगशालाओं में आंका जा सकता है। लेकिन समुद्र विज्ञान के मूल तत्वों का ज्ञान तो उन लोगों ने प्राप्त किया जिन्होंने अपने जीवन को जोखिम में डालकर समुद्र की अज्ञात गहराइयों में पैठने का साहस दिखाया। हमें यह मालूम नहीं कि प्राचीन काल का मानव योजनाबद्ध ढंग से, सोच-समझ कर समुद्र में यात्रा करता था या कि संयोगवश खुले समुद्र में पहुंच गया था लेकिन जो भी हो, जो लोग समुद्र यात्रा के बाद तट तक पहुंचने में सफल हुए उन्होंने आकर कष्टों की कहानी सुनायी जो उन्हें झेलने पड़े थे। उसी ज्ञान के आधार पर लोग जानबूझ कर समुद्र में यात्रा करने गए। समुद्र विज्ञान के विकास

में अनुभव और प्रमेय, दोनों का साथ रहा है।

समुद्रों का मानव जीवन के लिए बड़ा महत्त्व है। मानव जीवन पर समुद्र का प्रभाव मानव के साधारण कार्यक्षेत्र से कहीं अधिक बढ़कर है। सच तो यह है कि समुद्रों का प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ता है। पृथ्वी पर जलवायु कैसी होगी उसके नियामक समुद्र ही हैं। यहां हम केवल इतना कह देना चाहते हैं कि पृथ्वी पर होने वाली सारी वर्षा और उस पर चलने वाली हवाएं उन समुद्रों से ही उत्पन्न होती हैं, जो चारों ओर फैले हुए हैं। हमारे दैनिक जीवन में बहुत सी ऐसी आवश्यक वस्तुएं हैं, जिनका स्त्रोत समुद्र ही है। समुद्रों से केवल मछली ही नहीं मिलती, और भी बहुत सी वस्तुएं प्राप्त होती हैं। हाल के कुछ समय में तेल, प्राकृतिक गैस, कोयला और कई अन्य खनिज पदार्थ समुद्र तल से निकाले जाने लगे हैं। समुद्र माल को एक देश से दूसरे देश ले जाने का माध्यम भी हैं। इसमें संदेह नहीं कि विमान बहुत अधिक संख्या में चलने लगे हैं, फिर भी खाद्य पदार्थों, कच्चे माल और निर्मित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में समुद्री ज़हाजों की भूमिका अपार है। परिवहन और संचार के क्षेत्रों में समुद्र से जो सुविधाएं मिलती हैं वे इतनी व्यापक और प्रभावी हैं कि उनके स्थान पर पृथ्वी या वायु के माध्यम से वैसी सुविधाओं की व्यवस्था करना असंभव है। नये देशों पर विजय प्राप्त करने में भी समुद्रों की भूमिका सर्वविदित है। सच तो यह है कि समुद्री यात्रा की व्यवस्था होने के बाद ही कई नए देशों की खोज संभव हो सकी और एक नयी विश्व सभ्यता ने जन्म लिया। प्रतिरक्षा के क्षेत्र में भी समुद्र महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गए हैं। दूसरे विश्वयुद्ध में मित्र देशों की नौसेनाओं की शक्ति ने ही उन्हें अंततोगत्वा विजयी बनाया। वायु सेना के क्षेत्र में धुरी शक्तियों, जर्मनी, इटली और जापान, का वर्चस्व था लेकिन वे मित्र राष्ट्रों के आगे टिक नहीं सकीं। आज भी नौसेना की ही शक्ति है जो दो देशों के बीच झगड़े की स्थिति में रक्षा की पहली पंक्ति होती है और आक्रमण को प्रभावी ढंग से रोकने में सफल होती है।

समुद्र करोड़ों नर-नारियों के लिए आनंद और आमोद-प्रमोद का भी सर्वोच्च साधन है। लोग हजारों मील यात्रा करके और कष्ट सहकर समुद्र तट पर पहुंचते हैं जिससे कि वे एक सप्ताह या एक महीना वहां रह कर आराम कर सकें। कलाकार हों या कवि या कि जनसाधारण और पर्यटक, सभी समुद्र तट पर सैर का आनंद उठाने आते हैं। ऊंचे पर्वत शिखरों के समान समुद्र भी साहसी और जोखिम उठाने वाले नर-नारियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहे हैं। लेकिन पर्वत शिखरों के विपरीत

समुद्र में आमोद-प्रमोद पर बहुत कम खर्च आता है और साधारण नर-नारी उसका आनंद उठा सकते हैं। हमें समुद्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जो सारी पृथ्वी पर फैले हुए हैं। हमें समुद्र की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, जिनसे हमें अपनी प्रिय मातृभूमि के 86 करोड़ नर-नारियों के कल्याण के कार्य संपन्न करने में बहुत अधिक सहायता मिल सकती है।

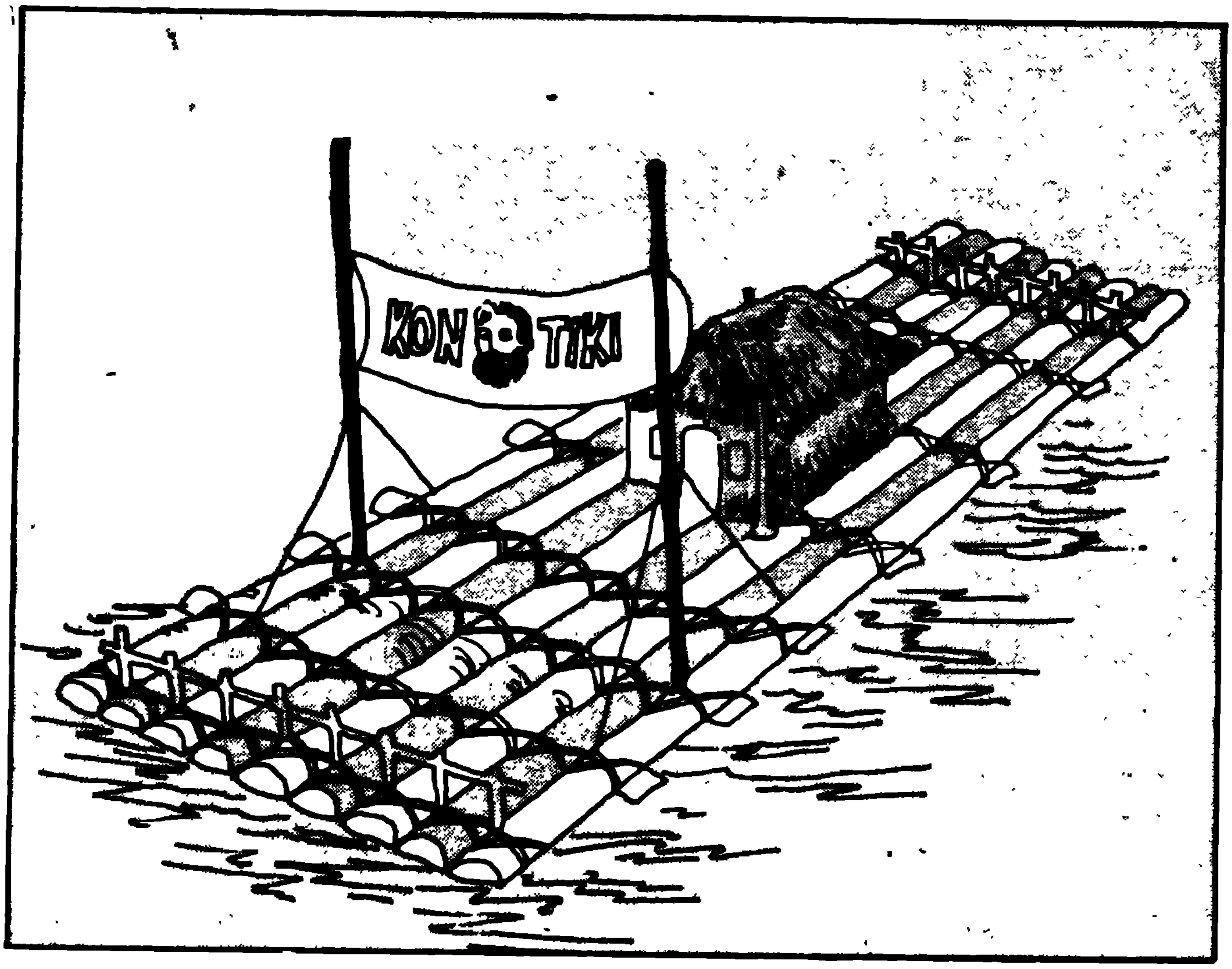
2

सागरों पर विजय

आदिकाल का मानव विभिन्न ढोरों को सवारी के रूप में प्रयुक्त करता था और उन्हीं से माल ढोने का काम लेता था। उस जमाने में लोग लकड़ी के लट्ठों पर बैठ कर या जानवरों की खालों में हवा भरकर नदियों और झीलों में यात्रा करते थे। ऐसा लगता है कि आदि मानव संयोगवश समुद्र तक पहुंचा होगा जब लकड़ी के लट्ठे पर बैठा वह समुद्र के मुहाने पर पहुंच गया होगा। इस प्रकार अनचाहे समुद्र तक पहुंच कर आदि मानव को डर भी लगा होगा, क्योंकि वह तो केवल नदियों से परिचित था और समुद्र की अथाह गहराई तथा असीम व्यापकता उसके लिए न केवल अज्ञात थी, बल्कि डर और शंका का स्त्रोत भी। लेकिन इसके साथ ही यह अनुभव भी उसके लिए खुलकर हुआ होगा कि इस व्यापक नए संसार में असीम संभावनाएं थीं। आदिकाल के जो मानव नदी की धाराओं या भाटे के कारण खिंच कर समुद्र में पहुंचे, वे वास्तव में सृष्टि के सबसे पहले समुद्र विज्ञानी थे। समुद्र के बारे में सबसे पहले विवरण उन्हीं लोगों के अनुभवों पर आधारित थे। हमें यह पता नहीं कि इन आदि सिंदबादों ने समुद्र से वापिस लौट कर अपने साथियों को क्या बताया था। लेकिन हम यह अवश्य जानते हैं कि नदी तट पर बसी बस्तियों के लोग धीरे-धीरे समुद्र तट पर आ गए और विभिन्न समुद्र तटों पर बड़ी बड़ी बस्तियां बस गईं। आज संसार भर में हम यह देखते हैं कि सबसे घनी आबादी वाले इलाके समुद्र तटों के हैं और अधिकतर बड़े नगर या तो समुद्र तट पर हैं या उसके आसपास। अब मानव सभ्यता मूल रूप से तटीय सभ्यता बन गई है। मानव समाज में जो उतार-चढ़ाव हैं, उसके नियामक समुद्र हैं।

प्रारंभिक प्रयत्न

मानव ने समुद्र पर विजय पाने के जो पहले प्रयत्न किए वे केवल नाम मात्र के थे। लेकिन उस समय मानव का ज्ञान सीमित था तथा उसके पास उपकरण भी मामूली किस्म के थे और इसलिए उसे अपनी उपलब्धि बहुत बड़ी लगी होगी।



चित्र 1 : कोन टीकी अभियान : नार्वे के सुप्रसिद्ध खोजी और नाविक थोर हायड्रल ने बालसा लकड़ी के बने तरापे पर बैठ कर प्रशांत महासागर में उसी रास्ते यात्रा की, जिस रास्ते प्राचीन काल में लोग दक्षिणी अमरीका से आए थे। वे यह प्रमाणित करना चाहते थे कि दक्षिणी प्रशांत महासागर के लोग अमरीका के मूल निवासी हैं जो पेस्त्र से अपने देवता, कोन टीकी, के आशीर्वाद से समुद्र पार करके इन द्वीपों में आ बसे हैं।

प्रारंभिक युग के मानव के लिए ताजे फलों और कंद मूल की तलाश में लकड़ी के लट्ठे पर बैठ कर किसी पास के द्वीप तक पहुंचना बहुत बड़ा साहसिक कार्य लगा होगा और जब उनमें से कुछ किसी द्वीप पर जाकर स्थायी रूप से बस जाते थे तो यह और भी बड़ा साहसिक कार्य माना जाता होगा। मछलियों और दूसरे जीवों को पकड़ने के लिए कांटों, रस्सियों और जालों के आविष्कार और उनके

प्रयोग को समुद्र पर विजय के अभियान में बहुत बड़ा कदम माना जा सकता है। जंगलों में पशुओं का शिकार करने की तुलना में समुद्र में मछली पकड़ने में बहुत कम खतरा था और लाभ अपेक्षाकृत अधिक। भीतरी प्रदेशों में, जहां जंगलों में हिंसक पशुओं का बाहुल्य था, रहने की बजाय समुद्र तट पर रहना अधिक निरापद और सुखकर था। मानव ने शीघ्र ही नियमित रूप से मछली पकड़ने और समुद्र संबंधी अन्य व्यवसायों को अपनाने की आदत डाल ली। इससे भी अधिक महत्त्व इस बात का था कि उसने समुद्री यात्रा कर के खाद्य पदार्थों और धन संपत्ति की खोज में दूसरे देशों तक पहुंचना सीख लिया। प्रारंभिक युग में जब समुद्र के रास्ते अज्ञात थे और कोई मानचित्र आदि नहीं होते थे, मानव लकड़ी और बांस का प्रयोग बड़ी मात्रा में करता था। लकड़ी के दो या तीन लट्ठों को रस्सों से बांध दिया जाता था और बांस खड़े करके उन पर कपड़ा या ताड़ के पत्ते लगा दिये जाते थे, जो पालों का काम करते थे। इस प्रकार वायु की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता था और इसी प्रकार सबसे पहले मानव ने पाल वाली नावें बनायीं। वे सबसे पहली नावें थीं जिन्हें शक्तिचालित नावों की संज्ञा दी जा सकती है। इन्हीं नावों में बैठ कर आदिकाल का मानव समुद्र तल पर चलने वाली हवाओं का लाभ उठाता था और दूर-दूर के देशों तक पहुंचता था।

पाल वाले जहाजों के आविष्कार के साथ ही मानव का क्षितिज और भी व्यापक हो गया। अब वह अपने देश से ही बंधा हुआ नहीं था। वह नए देशों की खोज कर सकता था और अधिक व्यापक क्षेत्र पर अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता था। जब समुद्र के माध्यम से यात्रा करना संभव हो गया तो मानव समूह सोच-समझ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसने का निर्णय करने लगे। नार्वे के सुप्रसिद्ध खोजी और नाविक थोर हायड्रल ने कहा है कि मानव समूह समुद्र के रास्ते एक स्थान छोड़ कर दूसरे में जाकर बसने लगे और कई बार वे दक्षिणी प्रशांत महासागर के द्वीपों और दक्षिणी अमरीका के बीच यात्राएं करते थे। उन्होंने जो साक्ष्य इकट्ठा किया है उसके आधार पर इस प्रमेय का प्रतिपादन किया है कि दक्षिणी प्रशांत महासागर के द्वीपों के वासी शुरू में दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी तटों से देसी नावों में बैठ कर इतनी दूर आए थे (चित्र 1)।

फिनीशिया सबसे आगे

कहा जाता है कि फिनीशिया (प्राचीन मिस्र) के वासी सबसे पहले लोग थे जिन्होंने संगठित ढंग से समुद्री यात्राएं आरंभ कीं। भूमध्य सागर में मिस्र के लोग बड़े आराम

से विचरण करते थे और चारों ओर पृथ्वी से घिरे इस समुद्र पर मिस्र के ही लोगों का वर्चस्व था। वे लोग लाल सागर और अरब सागर के कुछ हिस्सों से परिचित थे। एक दिन फरऊन (शासक) के आदेश से मिस्री लोग भूमध्य सागर छोड़कर जिब्राल्टर जलडमरू से होते हुए अटलांटिक सागर में खोज के लिए पहुंचे। कहा जाता है कि मिस्र के नाविक छोटे-छोटे समूहों में सभी दिशाओं में गए। उत्तर में वे इंग्लिश द्वीप समूह तक और दक्षिण में पश्चिमी अफ्रीका के तटों तक। अपनी एक महान समुद्री यात्रा में फिनीशिया के लोग दक्षिण में चलते ही गए और उन्होंने अफ्रीका के दक्षिणी छोर (जहां आजकल केपटाउन है) पर पहुंच कर दम लिया। उसके बाद वे हिंद महासागर में आ गए और उत्तर की ओर चले। वे अफ्रीका के पूर्वी तट के साथ-साथ यात्रा करते गए। सच तो यह है कि दो हजार वर्ष बाद वास्को डी गामा और उसके साथी इसी रास्ते से आये। लेकिन फिनीशिया के नाविकों ने अरब सागर पार नहीं किया। सुरक्षा की दृष्टि से वे अफ्रीका के तट के साथ-साथ यात्रा करते गए। ये लोग अंततोगत्वा लाल सागर से होते हुए साढ़े तीन वर्ष बाद अपने देश लौटे। अपनी यात्राओं से उन्होंने यह कल्पना की कि महासागर तो पानी का एक बहुत बड़ा भंडार है जो संसार की सारी भूमि के आसपास फैला हुआ है। समुद्र के आकार के बारे में यह विचार कई सदियों तक बना रहा।

बाद में अरबों ने मिस्रियों के समान ही समुद्री यात्राएं कीं। वे लोग व्यापार के लिए समुद्री रास्तों से दूर-दूर तक गए। उन्होंने अरब सागर, हिंद महासागर, दक्षिणी चीन सागर और दक्षिण-पश्चिमी प्रशांत महासागर में यात्रा करना सीख लिया। इसके अतिरिक्त वे भूमध्य सागर और दक्षिण-पूर्वी अटलांटिक में भी गए। अरब पहले लोग थे, जिन्होंने विश्वभर में व्यापार के लिए समुद्री रास्तों को नियमित रूप से अपनाया। वे लोग भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया से मसाले और इमारती लकड़ी लेकर पहले तो अपने पूर्वी तट तक पहुंचते थे और वहां से भूमि के रास्ते यह सामान यूनान और यूरोप के देशों तक पहुंचाते थे। विभिन्न महाद्वीपों के बीच व्यापार पर अरबों का एकाधिकार सा स्थापित हो गया था। समुद्र और भूमि के रास्ते परिवहन पर भी अरब ही छाए हुए थे।

अरबों को हिंद महासागर, अरब सागर, दक्षिणी चीन सागर और भूमध्य सागर के आसपास के देशों के बीच समुद्री रास्तों का पूरा ज्ञान था। सच तो यह है कि जब वास्को डी गामा अप्रैल, 1498 में दक्षिणी अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर गुड होप अंतरीप पर मुड़ा, तो उसने एक अरब नाविक अहमद इब्न माजिद की सहायता

मांगी। उसने उससे कहा कि वह उसे हिंद महासागर और अरब सागर से होकर भारत में मालाबार के तट तक पहुंचने में सहायता करे। भारत के साथ उन दिनों अरबों के मैत्रीपूर्ण संबंध थे लेकिन अरब नाविक और व्यापारी की भूमिका ही पसंद करते थे। उन्होंने अपनी नाविक शक्ति का प्रयोग दूसरे देशों पर विजय पाने के लिए नहीं किया जैसा कि बाद में यूरोप के लोगों ने किया। इस स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण अरब विभिन्न राष्ट्रों के बीच, जो समुद्र के कारण एक-दूसरे से अलग-थलग थे, व्यापार के विकास में बहुत अधिक योगदान दे सके। सच तो यह है कि इसी दृष्टिकोण के कारण अरबों ने हिंद महासागर को अलगाव पैदा करने वाले समुद्र की बजाय एक ऐसी झील बना दिया जो विभिन्न राष्ट्रों को आपस में जोड़ती थी।

समुद्र विज्ञान में भी अरबों ने बहुत प्रगति की थी। उन्होंने समुद्र की धाराओं, हवाओं, वर्षा और अन्य विशेषताओं का पर्यवेक्षण किया और उनके बारे में जानकारी को लिखित रूप दिया। उन्होंने विभिन्न तटों और द्वीपों के मानचित्र भी बनाए और इस बात का विवरण भी दिया कि जिन समुद्री रास्तों से उन्होंने यात्रा की है, उनमें कैसे उतार चढ़ाव आते हैं। मानसून का सबसे पहला पर्यवेक्षण और लिखित विवरण अरबों ने ही तैयार किया। सच तो यह है कि मानसून शब्द अरबी के शब्द मौसम से ही बना है। इस जानकारी से सभी राष्ट्रों के नाविकों को सहायता मिली और वे विभिन्न देशों के बीच माल ढोने और व्यक्तियों को सुरक्षित ले जाने में सफल हो सके।

बुद्ध के अवतरण के बाद भारतीयों में समुद्री यात्रा और खोज का प्रेम जाग उठा। बुद्ध ने एक सार्वभौम धर्म का उपदेश दिया। उनके उत्साही अनुयायी यह चाहते थे कि बुद्ध का संदेश हर उस राष्ट्र तक पहुंच सके जहां वे जा सकते थे। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध भिक्षु भारत के सभी मार्गों से बड़ी संख्या में श्रीलंका, बर्मा, थाईलैंड, मलेशिया, और इंडोनेशिया सहित दक्षिण-पूर्वी एशिया के सभी देशों तक पहुंचे। इस कारण न केवल बौद्ध धर्म इन देशों में बड़ी तेजी से फैला बल्कि भारत के उद्यमी राजाओं ने अपने साम्राज्य हिंद महासागर के दूसरे छोर पर बसे देशों तक फैला दिए। बाद में इनमें से कुछ साम्राज्य स्वतंत्र हो गए और कई शताब्दियों तक बने रहे। प्रसिद्ध इतिहासकार और कूटनीतिज्ञ श्री के. एम. पणिक्कर ने लिखा कि समुद्र की इस खोज और साम्राज्यों के प्रसाद का युग हमारे देश के इतिहास में एक शानदार युग था।

एक और महान जाति जिसने समुद्र पर मानव की विजय को स्थायी रूप दिया,

उत्तरी यूरोप की वाइकिंग जाति थी। इस जाति का प्रादुर्भाव नवीं शताब्दी में हुआ। वाइकिंग स्कैंडीनेविया (नार्वे और स्वीडन) से उत्तर की ओर चल कर ग्रीनलैंड तक पहुंचे और दक्षिण की ओर चले तो उन्होंने अटलांटिक महासागर के तट पर पहुंच कर दम लिया। वाइकिंग लगभग एक हजार ईस्वी में उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट पर बसे न्यू फाउंड लैंड तक भी पहुंचे। लेकिन उन्होंने अरबों के समान बस्तियां नहीं बनायीं और न अपने उपनिवेश स्थापित किए, जैसे कि पश्चिमी यूरोप के लोगों ने बाद में किए। इसके बावजूद समुद्र पर विजय में और उसके ज्ञान की दृष्टि से वाइकिंग जाति का योगदान बहुत अधिक था। नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड में समुद्र भ्रमण की महान परंपरा बनी रही है। आज भी वाइकिंग जाति के उत्तराधिकारी समुद्र भ्रमण के लिए प्रसिद्ध हैं और समुद्र विज्ञान में उनका योगदान किसी अन्य जाति या समूह से कम नहीं है।

समुद्र पर मानव की विजय धीरे-धीरे परंतु स्थिरता से हुई। यह अनिवार्य भी था क्योंकि समुद्र अभी तक अज्ञात है। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, मानव के सभी प्रयत्नों के बावजूद समुद्र आज भी रहस्यपूर्ण है जिसे देखकर मानव को डर भी लगता है और उसके मन में श्रद्धा भी जागती है। परंतु हमें यह सोचकर गर्व होता है कि अफ्रीका और एशिया के तटों पर रहने वाली प्राचीन जातियों के लोग पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अज्ञात समुद्रों पर विजय पाने का उपक्रम प्रारंभ किया। भूमध्य सागर को छोड़ कर, जो चारों ओर भूमि से घिरा हुआ है, हिंद महासागर पहला सागर था जिसमें मानव ने यात्रा की। भूमध्य सागर में भी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के लोग और सीरिया के निवासी थे जिन्होंने औरों को समुद्र की खोज का रास्ता दिखाया। पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक जब पश्चिमी यूरोप के लोग भी समुद्र की खोज के क्षेत्र में आगे आए, समुद्र के बारे में अधिकतर मूलभूत ज्ञान प्राप्त हो चुका था। यूरोप के खोजियों ने बड़े साहस और हिम्मत का परिचय दिया और उस समय समुद्र के बारे में जो ज्ञान उपलब्ध था उसका प्रयोग करके न केवल संसार भर के समुद्रों के बारे में ज्ञान का भंडार बढ़ाने में योगदान दिया, बल्कि एशिया और अफ्रीका के साम्राज्यों की जानकारी भी प्राप्त की जहां उन्होंने समुद्र के रास्ते पहुंच कर अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए।

पश्चिमी यूरोप का आविर्भाव

पंद्रहवीं शताब्दी का अंतिम दशक समुद्रों की खोज और उन पर विजय के लिए एक क्रांतिकारी युग था। यह वह समय था जब पश्चिमी यूरोप के लोग खोज और

साहसिक प्रयत्नों के क्षेत्र में उतर आए। सन् 1492 में कोलंबस स्पेन से चला तो उसका लक्ष्य भारत तक पहुंचना था। तब तक यह प्रमाणित हो चुका था कि पृथ्वी गोल है और इसलिए कोलंबस (चित्र 2) को विश्वास था कि यदि वह समुद्र के रास्ते पश्चिमी की ओर चलता जाएगा तो अंततोगत्वा पूर्व (और भारत) तक पहुंच जाएगा। उसका सोचना गलत नहीं था लेकिन वह भारत नहीं पहुंचा, क्योंकि अटलांटिक महासागर के दूसरी ओर अमरीका का महाद्वीप उसके सामने था। जो भी हो, कोलबंस की यात्रा मानव के इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना है क्योंकि उसके परिणामस्वरूप अटलांटिक और उससे परे के देशों पर विजय पाना संभव हो सका। अपने जीवन काल में कोलबंस ने तीन बार पाल वाले जहाजों में अटलांटिक को पार किया और इस प्रकार उस महासागर के बारे में जानकारी में अपूर्व वृद्धि की।

कुछ वर्ष बाद वास्को डी गामा स्पेन के क्षेत्र आइबेरिया के उसी तट से चला जहां से कोलंबस रवाना हुआ था और वह अफ्रीका महाद्वीप का चक्कर काट कर भारत पहुंच गया। इस यात्रा के परिणामस्वरूप भारत और पूर्व के अन्य देशों तक समुद्र का रास्ता खुल गया। गामा पहला व्यक्ति नहीं था, जिसने यह यात्रा की (अरब लोग अफ्रीका के तट से लेकर भारत तक अरब सागर में कई यात्राएं कर



चित्र 2 : क्रिस्टोफर कोलंबस

चुके थे और भारत के तट से अफ्रीका तक लगभग प्रतिदिन कोई न कोई अरब नाविक रवाना होता था)। गामा की यात्रा यूरोप निवासियों का पहला उपक्रम था जिसके परिणामस्वरूप यूरोप और भारत समुद्र के माध्यम से एक-दूसरे से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गए। अब यूरोप के लोग पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देशों को पार किए बिना समुद्र के रास्ते पूर्व तक पहुंच सकते थे।

पश्चिमी खोजकर्ताओं द्वारा समुद्र पर विजय के संदर्भ में अगली उल्लेखनीय घटना 1520 में हुई जब स्पेन के फडीनैंड मगैलिन ने (जो बड़ा जिद्दी आदमी था) दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी ओर के पथरीले द्वीपों में से अपने जहाज निकाले और पहला यूरोपीय बन गया जिसने प्रशांत महासागर तक पूर्व की ओर से यात्रा की। मगैलिन निश्चय ही पहला व्यक्ति था जिसने इतिहास की सबसे लंबी समुद्री यात्रा की। इस कारण उसकी यात्रा को समुद्र पर विजय में सबसे बड़ा उपक्रम कहा जा सकता है। वह 1519 में स्पेन से चला और पश्चिम की ओर चलते चलते 1521 में फिलिपींस पहुंच गया। वहां पर फिलिपींस के किसी नागरिक के साथ मुठभेड़ में उसकी मृत्यु हो गई लेकिन अपनी मृत्यु से पहले उसने इस रास्ते से समुद्री यात्रा करके समुद्र को समझने में अपना योगदान दे दिया था। उसने प्रशांत महासागर पार किया था और उसके बारे में सारा विवरण अपने हाथ से लिखा



चित्र 3 : फडीनैंड मगैलिन

था जिसमें बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी थी। उसका सबसे निकट सहयोगी सबैस्तियन डेल कैनो था, जिसने मगैलिन के पांच जहाजों में से अंतिम जहाज **विक्टोरिया** में अपनी यात्रा जारी रखी और 1522 में स्पेन पहुंच गया। जब मगैलिन स्पेन से चला था तो उसके साथ 243 नाविक थे, लेकिन उनमें से कुल 18 ही बचे थे। बाकी सब इस कठिन यात्रा में अपनी जान गंवा बैठे थे। साहसी व्यक्तियों का यह पहला समूह था, जिसने तीन वर्ष और बारह दिन में संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक समुद्री यात्रा की थी। सच तो यह है कि वे पहले समुद्र विज्ञानी थे जिन्होंने अपनी उस यात्रा में सभी महासागरों का स्थान प्राप्त किया (चित्र 3)।

उसके बाद की शताब्दियों में अटलांटिक महासागर और अन्य सागरों में बड़े पैमाने पर लोगों ने यात्रा की और एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचे। उनमें से बहुत से दूसरे स्थानों पर जाकर बस गए। नर-नारी और सभी आयु के बच्चे, जिनमें से अधिकांश ने पहले कभी समुद्र क्या समुद्र तट तक नहीं देखा था, अपरिचित देशों में, जो उन्होंने कभी नहीं देखे थे, नया जीवन प्रारंभ करने की आशा से समुद्र पार करने के लिए चल पड़े। यह उनके लिए बहुत बड़ा साहसिक कदम था। जब यूरोप के लोग अमरीका और आस्ट्रेलिया के लिए चले, जिनकी खोज उन्हीं दिनों हुई थी और उनमें से कुछ एशिया और अफ्रीका के लिए रवाना हुए तो यह यूरोप के लोगों का बड़े पैमाने का प्रवास अभियान था। ये व्यक्ति यूरोप के विभिन्न देशों— फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन, इटली, डेनमार्क, पोलैंड से आए थे और कई छोटे देशों के राष्ट्र जन भी प्रवास करने वालों में शामिल थे। उनकी सरकारों ने भी उनकी सहायता की जिससे कि वे समुद्री रास्तों से निरापद यात्रा कर सकें और नए देशों पर अधिकार कर सकें। समुद्र के बारे में और बहुत सी बातें अज्ञात थीं और विभिन्न राष्ट्रों में इस बात की होड़ लगी हुई थी कि वे उन समुद्री रास्तों के बारे में जानकारी प्राप्त करें, जहां से उनके जहाज जाते थे। इस जानकारी का प्रयोग वे अपने अपने राष्ट्रों के हितों के संवर्धन के लिए करते थे। इस नए ज्ञान का प्रयोग इन राष्ट्रों को समुद्र में होने वाली हानि को घटाने और प्रतिस्पर्धा करने वाले राष्ट्रों को समुद्र में होने वाली हानि को घटाने और प्रतिस्पर्धा करने वाले राष्ट्रों को हानि पहुंचाने के लिए किया गया।

परिणाम यह हुआ कि समुद्र में कई युद्ध हुए और उसके साथ ही विभिन्न तटों पर समुद्री डाकुओ के गिरोह बन गए। इस युग में समुद्रों में बहुत भीड़ रही। कई राष्ट्रों के जहाज मौसम में क्या साल भर समुद्रों में विचरण करते फिरते थे। नए देशों पर कब्जा करने का युद्ध वास्तव में समुद्री रास्तों पर वर्चस्व स्थापित

करने का युद्ध बन गया। भारत के पश्चिमी तट पर भी कई ऐसी समुद्री लड़ाइयां हुईं। पुर्तगाल की नौसेना और प्रसिद्ध एडमिरल कुनहाली के नेतृत्व में कालीकट के जमोरीनों के बीच भीषण युद्ध हुए। उधर गुजरात के तट पर पुर्तगालियों और अहमदाबाद के सुल्तानों के बीच समुद्री लड़ाइयां हुईं। बाद में ब्रिटेन और फ्रांस के बीच समुद्री युद्ध हुए जिसमें, दोनों ओर से, भारत के जहाजों ने भी भाग लिया। ये बहुत सी लड़ाइयां बंगाल की खाड़ी, अरब सागर और यूरोप के तटों तक सभी समुद्रों में हुईं।

कप्तान कुक के कारनामे

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में समुद्रों में असंख्य लड़ाइयां हुईं और उनके परिणामस्वरूप मानव ने समुद्र को अच्छी प्रकार समझ लिया। इसी काल में समुद्र विज्ञान का जन्म हो रहा था, यद्यपि इस शब्द का प्रयोग औपचारिक रूप से नहीं किया जा रहा था। ब्रिटेन के लोग थे, जिन्होंने संगठित ढंग से समुद्र के ज्ञान को समेकित करने और बढ़ाने में संसार का नेतृत्व किया। उनका एक महान नाविक कप्तान जेम्स कुक (चित्र 4) था जिसने 1769 और 1779 के बीच खोज के लिए ब्रिटिश जहाजों में तीन महत्त्वपूर्ण यात्राओं का नेतृत्व किया। पहली यात्रा में उसने



चित्र 4 : जेम्स कुक

आस्ट्रेलिया महाद्वीप की खोज की। अपनी अंतिम यात्रा में कप्तान कुक अटलांटिक और प्रशांत महासागरों के बीच उत्तर-पश्चिमी रास्ते की खोज में निकला और बेरिंग जलडमरूमध्य से होता हुआ उत्तरी ध्रुव के महासागर में जा पहुंचा। लेकिन वह आगे तक उत्तरी ध्रुव के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाया, क्योंकि समुद्र जमा हुआ था और जहाज आगे नहीं जा सकते थे। जब वह लौटा तो वह हवाई द्वीप समूह पहुंच गया जहां स्थानीय लोगों के साथ मुठभेड़ में उसकी मृत्यु हो गई। समुद्र विज्ञान में कुक का योगदान इतना अधिक था जितना कि उससे पहले या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति का हो सकता था। कप्तान कुक से पहले खुले समुद्र की अधिकतर यात्राएं या तो व्यापार के लिए थीं, या शोषण के लिए और या उपनिवेश बसाने के लिए। समुद्र में यात्रा करने वाले बहुत कम ऐसे व्यक्ति थे, जो समुद्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही समुद्रों को जानना चाहते थे। कुक एक ऐसा व्यक्ति था जो जानना और समझना चाहता था। उसकी प्रत्येक यात्रा में जीव विज्ञानी, खगोल शास्त्री और गणित के विशेषज्ञ उसके साथ होते थे। कुक के बाद समुद्र में जाने वाले सभी अभियानों के लिए यह एक परिपाटी बन गई कि इस प्रकार के जानकार लोग साथ हों। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि संसार भर के समुद्रों के बारे में नाना प्रकार की जानकारी इकट्ठी करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन ने समुद्रों के ज्ञान के भंडार और उसकी गुणवत्ता में अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक उपलब्धियां प्राप्त कीं। सच तो यह है कि यदि ब्रिटेन की नौसेना सारे संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली हो गई और उन्नीसवीं शताब्दी में संसार भर के समुद्रों पर उसका वर्चस्व स्थापित हो गया तो उसका यही कारण था।

डार्विन का वैज्ञानिक अभियान

बीगल नाम के जहाज की यात्राओं से समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में ब्रिटेन का ज्ञान बहुत अधिक बढ़ गया। सन् 1831 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक युवा प्रकृति विज्ञानी चार्ल्स डार्विन को ब्रिटेन के सर्वेक्षण अभियान के साथ सारे विश्व में समुद्री यात्रा करने का निमंत्रण दिया गया। उनका जहाज **बीगल** दिसंबर, 1831 में डेवन्स बंदरगाह से चला। इस अभियान का उद्देश्य यह था कि दक्षिणी अमरीका के दक्षिणी भाग में पैटागोनिया के तटीय क्षेत्र और टेराडैल फ्यूगो का सर्वेक्षण पूरा किया जाय और पृथ्वी की गोलाई को नापा जाय। यह जहाज कैनरी द्वीप समूह और कैपवर्दे द्वीप समूह पहुंचा और अटलांटिक महासागर को पार करके फरवरी, 1832 में ब्राजील के तट के पास पहुंच गया। अगले दो वर्ष तक इस अभियान दल के सदस्य

उन क्षेत्रों का गहन अध्ययन करते रहे। उन्होंने भूमि के साथ-साथ समुद्र का भी सर्वेक्षण किया और उन वनस्पतियों और जीव जंतुओं का सर्वेक्षण किया जो उन क्षेत्रों में पाये जाते थे। डार्विन के लिए तो यह अवसर वरदान स्वरूप था। इसी यात्रा के दौरान डार्विन ने जो जानकारी इकट्ठी की, उसी के आधार पर उसने अपने प्रसिद्ध परंतु विवादास्पद प्रमेय का प्रतिपादन किया जिसका सार यह है कि प्रकृति शक्तिशाली प्रजातियों को ही जीवित रखने के लिए चुनती है। यह जहाज अक्तूबर, 1836 में इंग्लैंड के बंदरगाह प्लाइमथ लौट आया। चार वर्ष तक इस अभियान दल ने प्रशांत महासागर के उत्तरी भागों का सर्वेक्षण किया और उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। 1845 में, अर्थात् **बीगल** के लौटने के नौ वर्ष बाद, इन तीन महासागरों के नाम अटलांटिक महासागर, प्रशांत महासागर और हिंद महासागर रखे गए। इनके नाम तो सभी ने स्वीकार कर लिए, परंतु इन समुद्रों में जो अथाह गहराइयां और जल है उसकी खोज और विश्लेषण नहीं हो सका। कई देशों के तटों के साथ खाड़ियों और छोटे-छोटे समुद्रों के जल की जांच भली प्रकार की जा सकी। लेकिन यह काम व्यापार, नौवहन और युद्ध के उद्देश्यों के लिए किया गया। अभी तक समुद्र विज्ञान की जड़ें गहरी नहीं हुई थीं।

लेकिन समुद्र में पानी की धाराओं और उसकी सतह पर चलने वाली हवाओं के बारे में काफी जानकारी इकट्ठी हो गई। उससे यह पता चलता था कि ये धाराएं और हवाएं किस दिशा में चलती हैं और इनकी गति कितनी है। यह जानकारी जहाजों के कप्तानों और उनमें रखी गई किताबों में सुरक्षित थी। ज्यों-ज्यों समुद्र में चलने वाले जहाजों की संख्या बढ़ी, इस जानकारी का भंडार भी बढ़ता चला गया। फिर इस बात की भी आवश्यकता थी कि कोई व्यक्ति इस सारी जानकारी को व्यवस्थाबद्ध ढंग से समेकित करे जिससे कि एक समग्र समुद्र विज्ञान की नींव डाली जा सके। यह महान काम अमरीका की नौसेना के अधिकारी लेफ्टिनेंट मैथ्यू फोंटेन मोरी के कंधों पर पड़ा। मोरी 1825 में नौसेना में भर्ती हुए थे, लेकिन 1834 में एक घाव के कारण उन्हें तट पर तैनात कर दिया गया। इससे उन्हें इस बात का अवसर मिला कि वे नौवहन के बारे में लेख लिख सकें। जब उन्हें 1842 में नौसेना डिपो का अधीक्षक नियुक्त किया गया, तो उन्हें उन पुस्तकों को पढ़ने का अवसर मिला जो जहाजों के कप्तानों ने रखी थीं। उन्होंने **दि फिजिकल ज्योग्राफी ऑफ दि सी** के नाम से अंग्रेजी भाषा में एक पुस्तक लिखनी प्रारंभ की। यह समुद्र विज्ञान पर पहली पुस्तक है। पुस्तक प्रकाशित होने से पहले मोरी पत्र व्यवहार के माध्यम से विभिन्न महासागरों और समुद्रों में चलने वाली धाराओं, हवाओं,

उनके तलों और द्वीपों आदि के बारे में और अधिक जानकारी इकट्ठी करने में सफल हो गए।

ब्रिटेन का वर्चस्व

अब समुद्र विज्ञान का जन्म विधिवत हो चुका था लेकिन महासागरों के बारे में लोगों का ज्ञान मुख्य रूप से तटों के साथ लगते क्षेत्रों और समुद्र की सतह के कुछ मार्गों तक सीमित था। समुद्रों में और उनके नीचे क्या है यह तब तक अज्ञात था, क्योंकि कोई उनमें पैठ नहीं पाया था। मानव अधिक गहराई तक समुद्र में प्रवेश नहीं कर सकता था और यह नहीं देख सकता था कि वहां पर क्या है। कप्तान कुक ने समुद्र के ज्ञान की जिस खोज का सूत्रपात किया था वह लाभकारी सिद्ध हुई और यह अनिवार्य ही था कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उसी दिशा में आगे खोज की जाती। अब भी ब्रिटेन ने ही इस मामले में पहल की। सन् 1839 और 1843 के बीच कप्तान जेम्स सी रॉज के नेतृत्व में दो ब्रिटिश जहाजों का एक अभियान दल दक्षिणी ध्रुव के महासागर की गहराई नापने और उसका सर्वेक्षण करने के लिए चला। उसके बाद 1873 और 1876 के बीच ब्रिटेन ने अपना जहाज **चैलेंजर** भेजा। उसे यह काम सौंपा गया कि संसार के सभी समुद्रों की खोज करके उनके मानचित्र तैयार करे। इतने बड़े पैमाने पर यह काम अभी तक नहीं हुआ था।

चैलेंजर की खोज के परिणामस्वरूप समुद्र विज्ञान के विकास में बहुत वृद्धि हुई। यह कहा जा सकता है कि उसके बाद से समुद्र विज्ञान एक विकसित विज्ञान बन गया है। **चैलेंजर** ब्रिटिश नौसेना का जहाज था जिसमें 18 तोपें लगी थीं। इसकी तोपें उतार ली गईं और समुद्र के अनुसंधान के लिए आवश्यक उपकरण इसमें लगा दिए गए। उन दिनों के हिसाब से यह काफी बड़ा जहाज था (2300 टन) जिसमें भाप का इंजिन भी था और पाल भी लगे थे। इसके कप्तान थे कैप्टन जार्ज नेरस। इसके अनुसंधान दल के नेता थे एडनब्रा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर चार्ल्स वाइविले टामसन। इसमें कुल 240 व्यक्ति सवार थे। यह जहाज इंग्लैंड के बंदरगाह पोर्ट्समथ से दिसंबर, 1872 में चला। इसने तीन वर्ष में एक लाख किलोमीटर से अधिक दूरी तय की और यह 362 स्थानों पर ठहरा जहां पर उसने मौसम, समुद्र तल पर पानी की धाराओं, पानी के तापमान, विभिन्न गहराइयों पर रासायनिक तत्त्वों, समुद्र में पाए जाने वाले जीवों और उसकी तह पर बैठे पदार्थों के बारे में जानकारी इकट्ठी की। इस जहाज के वैज्ञानिकों ने जहाज के रास्ते

में समुद्र के उतार चढ़ाव का सर्वेक्षण किया। 4,717 नये समुद्री जीवों को पकड़ा ओर उनका वर्गीकरण किया और जहां जहां जहाज ठहरा, वहां वहां समुद्र की गहराई मापी। सबसे अधिक गहराई पश्चिमी प्रशांत महासागर में चैलेंजर डीप नाम के स्थान पर थी। यहां समुद्र 8,055 मीटर अर्थात् 26,850 फुट गहरा है। यह जहाज उत्तरी अटलांटिक में कई बार घूमा और वहां से दक्षिणी अटलांटिक होते हुए पूर्व की ओर मुड़कर दक्षिणी ध्रुव के महासागर में पहुंच गया। वहां से वह आस्ट्रेलिया पहुंचा और पश्चिमी प्रशांत महासागर के द्वीपों में गया। उसके बाद वह पूर्व की ओर चलता हुआ हवाई द्वीप समूह पहुंचा और मगैलिन जलडमरूमध्य पार करके फिर अटलांटिक पहुंच गया। वहां से वह वापिस इंग्लैंड की ओर चला और 24 मई, 1876 को वहां पहुंच गया। इस यात्रा के दौरान जो सामग्री इकट्ठी की गई थी उसका प्रारंभिक विश्लेषण तो जहाज में ही कर लिया गया था, लेकिन तीन वर्ष की इस यात्रा में इकट्ठी की गई सामग्री और जानकारी का ब्यौरेवार अध्ययन करने में कई वर्ष का समय लग गया। **चैलेंजर** अभियान रिपोर्ट 29,500 पृष्ठों में है और पचास खंडों में प्रकाशित की गई है। इसे पूरा करने में 23 वर्ष का समय लगा। इस अभियान के परिणामस्वरूप समुद्र विज्ञान संबंधी साहित्य का सृजन पहली बार हुआ।

खोज कार्य में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा

शीघ्र ही अन्य राष्ट्रों ने भी समुद्र विज्ञान के विषय को अपना लिया। कई राष्ट्रों ने अलग अलग अध्ययन दल और जहाज भेजे। समुद्र विज्ञान के संवर्धन और उसके माध्यम से अपनी शक्ति बढ़ा कर समुद्र पर नियंत्रण करने की होड़ में फ्रांस, जर्मनी, नार्वे, अमरीका, रूस और अन्य यूरोपीय राष्ट्र बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे। भारत ने भी ब्रिटेन के तत्वावधान में समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में पदार्पण किया।

चैलेंजर अभियान के बाद पचास वर्षों में समुद्र संबंधी अनुसंधान व्यवस्थाबद्ध नहीं थे। उनमें अधिकतर अलग अलग थे, कहीं कहीं पर्यवेक्षण करने की चेष्टा की गई थी। लेकिन उत्तरी अटलांटिक और नार्वे के समुद्र के बारे में नार्वे के अध्ययन इस बात पर केंद्रित थे कि क्षेत्रों का ब्यौरेवार अध्ययन किया जाय। **चैलेंजर** अभियान के बाद समुद्र विज्ञान के संवर्धन में सबसे अधिक योगदान जर्मनी के **मीटिअर** अभिमान ने दिया। इस जहाज की यात्रा 1925 में प्रारंभ हुई और इसने वह काम किया जो पहले किसी ने करने की चेष्टा नहीं की थी। वह था एक समुद्र, दक्षिणी अटलांटिक, का व्यापक अध्ययन। 25 महीनों के समय में **मीटिअर**

छह से अधिक बार अटलांटिक में गया। उसमें बैठे वैज्ञानिकों ने सभी प्रकार के मौसमों में दिन रात जानकारी इकट्ठी की। उन्होंने 70,000 बार समुद्र की गहराई नापी। **मीटिअर** अभिमान पहला अभियान था जिसने यह जानकारी दी कि समुद्र का तल ऊबड़-खाबड़ है जैसे कि कोई निर्जन प्रदेश होता है। वह समतल नहीं जैसा कि पहले समझा जाता था। जर्मनों ने समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में यह जो पहल की इसी के परिणामस्वरूप वे आगे चलकर अपनी नौसेना को अधिक शक्तिशाली बना सके।

समुद्र विज्ञान के तेजी से विकास का अगला चरण दूसरे विश्व युद्ध के वर्षों में आया। वास्तव में यह इस कारण हुआ कि युद्ध के दोनों पक्षों के राष्ट्र अपनी अपनी नौसेनाओं को अधिक सक्रिय बना रहे थे। इस विकास में अमरीका, यूरोप, जापान, रूस और एशिया के सभी देशों का हाथ रहा। विभिन्न राष्ट्रों के जहाजों को अपरिचित समुद्रों में लड़ाइयां लड़नी पड़ीं, जिनके बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं था। दक्षिणी प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर, उत्तरी ध्रुव महासागर और दक्षिणी ध्रुव महासागर के जोखिम भरे क्षेत्रों में विभिन्न राष्ट्रों के जहाज नियमित रूप से जाने आने लगे। उनकी ये यात्राएं जीवित बचे रहने का संघर्ष मात्र थीं। यह अनिवार्य था कि वे उन समुद्रों के बारे में अधिकाधिक जानकारी इकट्ठी करें। दूसरे विश्वयुद्ध के अंत तक इस जानकारी का भंडार बहुत बढ़ गया। इसमें समुद्र की सतह, गहराई, तापमान, पानी की धाराओं और हवा के वेग, जीवों व वनस्पतियों तथा समुद्रों और सागरों के अन्य कई पहलुओं के बारे में जानकारी थी। विश्वभर की समुद्र विज्ञान की प्रयोगशालाओं में उस जानकारी का विश्लेषण होता रहा, जो युद्ध के दिनों में इकट्ठी की गई थी।

यह बात अद्भुत है, लेकिन है सच कि दूसरे विश्वयुद्ध के कारण समुद्र पर संगठित रूप से आक्रमण संभव हुआ, जिसमें अलग से कुछ खर्च नहीं करना पड़ा। अब मानव द्वारा समुद्र की विजय अंतिम और निर्णायक सिद्ध हुई। यह बात भी प्रमाणित हो गई कि उसका भविष्य समुद्र के साथ जुड़ा हुआ है। मानव सभ्यता अनिवार्य रूप से तटीय सभ्यता रही है। लेकिन अब यह भी स्पष्ट हो गया है कि समुद्र की ओर ध्यान दिए बिना यह सभ्यता जीवित नहीं रह सकती, बल्कि इस पर समुद्र का ही नियंत्रण है।

उत्तरी ध्रुव की खोज

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में भीषण ठंड पड़ती है और परिस्थितियां अत्यंत कठोर

हैं। प्राचीन मानव को उत्तर और दक्षिणी ध्रुवों के बारे में कुछ पता नहीं था। कुछ समय पहले तक यह भी पता नहीं था कि वहां पर समुद्र ही है या भूमि भी। केवल इतना निश्चित रूप से पता चल चुका था कि दोनों ध्रुवों पर सदा बर्फ जमी रहती है और वहां मानव का रहना बहुत कठिन है।

मानव का ध्यान सबसे पहले उत्तरी ध्रुव की ओर गया। सच तो यह है कि उत्तरी ध्रुव के सबसे पहले खोजी एस्कीमो थे जो वहां पर जाकर रहने लगे। यह स्पष्ट रूप से पता नहीं है कि उन्होंने इन ठंडे प्रदेशों पर कैसे अधिकार किया। सामान्यता यह माना जाता है कि ये लोग मंगोल जाति के हैं और साइबेरिया से उत्तर की ओर गए थे और उसके बाद धीरे धीरे उन्होंने बर्फ के इस महासागर के सारे तटीय प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया। एस्कीमो क्षेत्र अलास्का से ग्रीनलैंड और लेब्राडोर तक लगभग 10,000 किलोमीटर लंबा है। कहते हैं कि एस्कीमो शायद एकमात्र जाति है जो इस प्रकार की संकरी पट्टी पर निवास करती है। लेकिन इस लंबे चौड़े क्षेत्र में न केवल उनकी भाषा और संस्कृति में एकरूपता है बल्कि उनकी शक्ल सूरत भी एक जैसी है। बाकी मानवीय सभ्यताओं के साथ उनका संबंध टूट चुका था और इसलिए एस्कीमो जाति की अपनी एक जीवन शैली का विकास हुआ।

कई शताब्दी बाद यूरोपवासियों ने उत्तरी ध्रुव के क्षेत्रों की खोज प्रारंभ की। सबसे पहले खोज करने वाले थे नार्वे की वाइकिंग जाति के लोग। उसके बाद ब्रिटेन, हालैंड, रूस और उत्तरी यूरोप के अन्य देशों के नागरिकों ने इस बर्फ से ढके प्रदेश में पहुंचने की कोशिश की। एक उद्देश्य तो यह था कि पूर्व की ओर जाने के लिए उत्तर-पूर्वी रास्ता तलाश किया जाय जैसे कि उत्तर-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी रास्ते जहां से होकर पूर्व तक पहुंचा जा सकता है और जो दक्षिणी अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के दक्षिणी छोरों तक हैं और जिन्हें पुर्तगाल और स्पेन के एकाधिकार में माना जाता है।

प्रारंभ में जो लोग खोज करने गए उनमें विलियम बारनेट्स का नाम सबसे ऊपर है। वह नार्वे से उत्तर की ओर चला और उसने बेयर द्वीप समूह और स्पिट्सबर्गन की खोज की, जिसे उसने भूल से ग्रीनलैंड समझ लिया। उसके दल को सर्दी का मौसम उत्तरी ध्रुव के क्षेत्र में बिताना पड़ा। वापस आते समय बारनेट्स की मृत्यु रास्ते में ही हो गई और इसी कारण आज तक उत्तरी ध्रुव और अटलांटिक महासागर के बीच के समुद्र का नाम बारनेट्स सागर है।

लगभग एक शताब्दी से अधिक समय बाद, पीटर महान् के राज्यकाल में,

रूसियों ने कई अभियान दलों का संगठन किया, जिनकी योजना वाइटस बेरिंग ने बनायी थी। वह डेनमार्क का रहने वाला था और रूस की नौसेना में अधिकारी था। सन् 1741 में बेरिंग ने स्वयं उत्तरी प्रशांत महासागर तक एक अभियान दल का नेतृत्व किया। वह एशिया और अमरीका के बीच के समुद्र में गया और अंत में अलास्का के तट पर पहुंचा। बाद में इस समुद्र का नाम उसी के नाम पर बेरिंग सागर (बेरिंग जलडमरूमध्य) रख दिया गया।

सन् 1798 में महान् ब्रिटिश खोजी कप्तान जेम्स कुक बेरिंग समुद्र से होकर साइबेरिया के तट पर उत्तरी केप तक पहुंचा, जिसे आजकल केप श्मिड्स कहा जाता है। बेरिंग के विपरीत कप्तान कुक इस जलडमरूमध्य के दोनों ओर देख सकता था और उसने यह प्रमाणित कर दिया कि एशिया और उत्तरी अमरीका के महाद्वीप अलग अलग हैं। कप्तान जान रास और उनके अधीन कमांडर लेफ्टिनेंट डब्ल्यू. ई. पैरी ने उत्तरी ध्रुव का विस्तृत सर्वेक्षण करने की चेष्टा की। रास के भतीजे जे. सी. रास ने यह सिद्ध कर दिया कि उत्तरी चुंबकीय ध्रुव बुथिया प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्व में स्थित है।

इस बढ़ते हुए वैज्ञानिक अनुसंधान के परिणामस्वरूप व्हेल मछली और जानवरों का समूर व्यापार चमक उठा। इस क्षेत्र में अगुआ थे ब्रिटेन, डेनमार्क और फ्रांस के लोग। व्हेल मछली का शिकार करने वालों में सबसे प्रसिद्ध तो विलियम स्कोर्सबी और उनके पुत्र थे। स्कोर्सबी ने बर्फ भरे समुद्र में जहाज चलाने में सहायक उपकरणों का आविष्कार किया जिनमें सबसे ऊंचे मस्तूल पर एक नाविक के सुरक्षित बैठे रहकर आसपास दृष्टि रखने का स्थान भी शामिल है। उनके पुत्र भी इसी काम में लगे थे और उन्होंने उत्तरी ध्रुव पर दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। 1806 में स्कोर्सबी 81° 12' उत्तर तक पहुंचे।

इसके आगे जाना खतरे से खाली नहीं था। जो जहाज उत्तर की ओर आगे गए वे सर्दी में जल जम जाने के कारण पिचक गए और कई अभियान दलों का बहुत बुरा अंत हुआ। उत्तरी ध्रुव के महान खोजियों में से एक नार्वे के फ्रिडजोट नानसेन थे, जिन्होंने यह सोचा कि ऐसा जहाज बनाया जाय जो जमते हुए जल के दबाव से ऊपर उठ जाय और बर्फ उसे कुचल न सके। नानसेन के जहाज का नाम **फ्रेम** था। यह 1843 में चला और नार्वे से चलकर काला समुद्र में पहुंचा। नानसेन अपने एक साथी हालमैन जानमन को साथ लेकर बर्फ गाड़ी से उत्तरी ध्रुव तक पहुंचने के लिए चले। वे 84° उत्तर में पहुंच कर जहाज से उतर आए और 86° 13° उत्तर तक पहुंचने का एक नया कीर्तिमान उन्होंने स्थापित किया।

जब जल जम गया तो उनका जहाज तीन वर्ष तक वहीं डोलता रहा और 1896 में स्पिट्सबर्गन के उत्तर में पहुंच गया। **फ्रेम** अभियान दल के बाद इस बात में कोई संदेह नहीं रहा कि उत्तरी ध्रुव का अस्तित्व है।

विभिन्न राष्ट्रों के अभियानों दलों का अगला कदम यह था कि भूगोलीय ध्रुव तक पहुंचें। इस उपलब्धि का श्रेय अमरीका के राबर्ट ई. पेयरी को जाता है जो 1909 में उत्तरी ध्रुव में पहुंचे। उसके बाद ध्रुव तक पहुंचने वाले व्यक्ति रिचर्ड ई. बर्ड थे जो फ्लॉयड बैनट के साथ, जो उनके विमान चालक थे, विमान द्वारा उत्तरी ध्रुव पहुंचे और लौट कर आये। यह मई, 1926 की बात है।

उत्तरी ध्रुव सागर की खोज के काम में विभिन्न देशों ने परस्पर सहयोग किया। सन् 1882-83 में एक अंतर्राष्ट्रीय ध्रुव वर्ष मनाया गया। जिसमें उत्तरी ध्रुव के क्षेत्र में विभिन्न केंद्रों पर पर्यवेक्षण किए गए और उनके परिणाम एक स्थान पर एकत्रित किए गए। नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड, रूस, हालैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, अमरीका और ब्रिटेन ने इस काम में हाथ बंटाया। सन् 1932-33 में दूसरा अंतर्राष्ट्रीय ध्रुव वर्ष अधिक बड़े पैमाने पर मनाया गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद उत्तरी ध्रुव की खोज का काम और अधिक बढ़ गया। आज यह कहा जा सकता है कि शायद उत्तरी ध्रुव एक मात्र सागर है, जिसके बारे में सबसे अधिक अध्ययन किया गया। इस काम में रूस की भूमिका सबसे अधिक रही है। आज रूस के बड़े बड़े जहाज जो बर्फ को तोड़ सकते हैं, बर्फ से भरे उत्तरी ध्रुव के समुद्र में ऐसे चलते हैं मानों वह सागर रूस की ही कोई झील हो। सन् 1958 में अमरीका की परमाणु शक्ति से चलने वाली पनडुब्बी **नाटीलस** ने गर्मी और सर्दी, दोनों मौसमों में पानी के नीचे उत्तरी ध्रुव की यात्रा की। आजकल बहुत सी विमान कंपनियों के जहाज उत्तरी ध्रुव पर से उड़ान भरते हैं क्योंकि उससे उनकी दूरी कम हो हाती है और ईंधन की बचत होती है।

दक्षिणी ध्रुव की खोज

दक्षिणी ध्रुव की ओर मानव का ध्यान बहुत बाद में गया, यद्यपि दक्षिणी प्रशांत क्षेत्र के आदिकालीन पोलीनीसियाई लोगों को इसकी जानकारी अवश्य रही होगी। कई शताब्दियों तक इस बात में संदेह रहा कि दक्षिणी ध्रुव पर भूमि है भी या नहीं। जब इस बात का निश्चित प्रमाण मिलेगा कि वहां भूमि है तब भी यह पता नहीं था कि उसका क्षेत्र कितना है। आज हम जानते हैं कि दक्षिणी ध्रुव के आसपास भूमि है। इस भूमि के आसपास 55° दक्षिण में जो स[illegible]द्र है उसे दक्षिणी ध्रुव सागर

या दक्षिणी महासागर कहा जाता है। सच तो यह है कि यह महासागर प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर और हिंद महासागर के साथ मिलता है। आकार की दृष्टि से यह दूसरे नंबर का सबसे छोटा महासागर है जिसका कुल क्षेत्र 3,22,48,000 वर्ग किलोमीटर है और जिसकी औसत गहराई 3,701 मीटर है।

सबसे पहले जिन लोगों ने दक्षिणी ध्रुव की खोज की, उनमें फ्रांस की नौसेना के एक अधिकारी जे. बी. सी. बूवे द लौजियर थे। वे 1739 में बर्फ से भरे समुद्र में गए और उनकी इस यात्रा के परिणामस्वरूप 54° 10′ पर स्थित बूवे द्वीप की खोज हुई। बाद में एक अभियान दल गया तो एक अन्य फ्रांसीसी केरग्यूलेन त्रैमेयार्क ने केरग्यूलेन द्वीपों की खोज की। यह घटना 1772 की है। लेकिन दक्षिणी ध्रुव की खोज के इतिहास में सबसे अधिक उल्लेखनीय नाम कप्तान जेम्स कुक का है। सन् 1772 और 1774 के बीच उन्होंने कई बार दक्षिधी ध्रुव वृत को पार किया। 30 जनवरी, 1774 को वे 71° दक्षिण तक पहुंचे।

वाणिज्य के क्षेत्र में जोखिम उठाने वालों को धन संपत्ति के लोलुप लोगों ने दक्षिणी ध्रुव की खोज के काम को आगे बढ़ाया। कप्तान कुक के पद चिन्हों पर चलते हुए उन्होंने खतरनाक बर्फ से भरे समुद्र में जाकर सील का शिकार करने की चेष्टा की। इन लोगों ने भी समुद्र के उस क्षेत्र के बारे में लाभप्रद जानकारी दी जहां पर वे जाते थे। लेकिन उन्होंने इस जानकारी को गुप्त रखा, क्योंकि उनमें आपस में होड़ लगी रहती थी। इस चरण के बाद वह युग आया जब कई पश्चिमी राष्ट्रों ने व्हेल मछली का शिकार करने के लिए अपने अभियान दल भेजे। व्हेल मछली का शिकार करने वाले दक्षिणी ध्रुव महासागर में कई द्वीप समूहों का पता लगाने के जिम्मेदार हैं।

1823 में जेम्स वेडल 160 टन की नाव में उस समुद्र में गए, जिसका नाम उनके नाम पर पड़ गया है। वे 74° दक्षिण तक पहुंचे जो एक नया कीर्तिमान था। दक्षिणी ध्रुव की खोज में एक और नाम उल्लेखनीय है और वह है अमरीका के चार्ल्स विलकेज का। वे पहले व्यक्ति थे। जिन्होंने दक्षिणी महाद्वीप के बड़े भाग को देखा और इस बात को महसूस किया कि वहां पर बहुत बड़ा महाद्वीप हो सकता है। उन्होंने चुंबकीय दक्षिणी ध्रुव का जो स्थान निर्धारित किया वह भी लगभग ठीक ही था।

सन् 1839 में ब्रिटिश सरकार ने जेम्स क्लार्क रास की कमान में एक अभियान दल दक्षिणी ध्रुव भेजा। यह अभियान बहुत सफल हुआ। इसने रास सागर का सर्वेक्षण किया। बाद में जो अभियान दल गए वे इसी सागर से होते हुए दक्षिणी

ध्रुव के महाद्वीप तक पहुंचे। इस अभियान दल की दूसरी उपलब्धि यह थी कि वह 78°4' दक्षिण तक पहुंच कर एक नया कीर्तिमान स्थान करने में सफल हुआ।

सन् 1874 में जब शुक्र (वीनस) ग्रह ने अपना स्थान बदला, तो अमरीकी, ब्रिटिश, जर्मन और फ्रांसीसी अभियान दल केरग्यूलेन द्वीप पर पहुंचे, जहां से यह स्थान परिवर्तन पूरी तरह दिखाई दे सकता था। इसके बाद विभिन्न राष्ट्रों, विशेषकर यूरोपीय और अमरीकी राष्ट्रों ने कई अभियान दल दक्षिणी ध्रुव भेजे। सन् 1901 से 1904 ईस्वी तक ब्रिटेन का राष्ट्रीय दक्षिणी ध्रुव अभियान दल रायल सोसायटी और रायल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ने मिल कर भेजा था। इसके नेता थे कमडोर (बाद में कप्तान) आर. ए. स्काट जो ब्रिटेन की नौसेना में थे। लगभग इसी काल में जर्मनों ने **गॉस** अभियान दल भेजा जिसके नेता एरिक वान ओरीगेल्स्की थे। इन सभी अभियान दलों ने दक्षिणी ध्रुव सागर के अधिकतर भाग का सर्वेक्षण करने में बहुत योगदान दिया। उन्होंने इस सागर के परे भूमि के क्षेत्र का भी सर्वेक्षण किया।

कैप्टन स्काट ने 1910 में 'टेरा नोवा' में एक और अभियान का नेतृत्व किया जिसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से यह था कि दक्षिणी ध्रुव तक पहुंचा जाय। उन्हीं दिनों रोनल्ड अमंडसेन के नेतृत्व में नार्वे का एक दल दक्षिणी ध्रुव के क्षेत्र में **फ्रेम** में खोज का काम कर रहा था। अमंडसन ही थे जो 14 दिसंबर, 1911 को सबसे पहले दक्षिणी ध्रुव तक पहुंचे। उसके कुछ ही समय बाद 17 जनवरी, 1912 को एक ब्रिटिश दल वहां पहुंचा, जिसके सदस्य थे स्काट, विल्सन, बावर्स, एल. ई. जी. ओएटस ओर एडगार एवान्स। मौसम बहुत खराब था और इस कारण वापसी पर ओएटस और एवान्स की रास्ते में ही मृत्यु हो गई।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने **डिस्कवरी** नाम का अभियान (1925-27) दल भेजा जिसका मुख्य उद्देश्य दक्षिणी ध्रुव के समुद्र में व्यापक सामुद्रिक अनुसंधान करना था। उसके बाद कुछ प्रमुख खोजियों के नेतृत्व में अन्य अभियान दल दक्षिणी ध्रुव गए। ये थे, क्रिस्टेंसन (1927-37), विल्किंस (1928-29), बर्ड (1927-34), मोसन (1929-31) और एल्सवर्थ (1933-34)। सन् 1937 में अमरीका की सरकार ने दक्षिणी ध्रुव सेना का गठन किया, जिससे कि दक्षिणी ध्रुव के कुछ भागों पर स्थायी रूप से कब्जे और वैज्ञानिक अनुसंधान की योजना बनाई जा सके।

दूसरे विश्वयुद्ध में दक्षिणी समुद्र के क्षेत्र में सेनाएं बहुत सक्रिय रहीं। युद्ध संबंधी कार्यकलाप का अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि बर्फ से भरे इस समुद्र को

समझने में हमें बड़ी सहायता मिली। दक्षिणी ध्रुव के समुद्र और उसके तटों पर बसे हुए महाद्वीप की ओर इतना अधिक ध्यान दिया गया कि उसका यह परिणाम हुआ कि आज हम इस सारे क्षेत्र के बारे में बहुत कुछ जानते हैं।

लेकिन इस ज्ञान के परिणामस्वरूप दक्षिणी ध्रुव के क्षेत्र पर कई राष्ट्रों ने अपने दावे जताने की चेष्टा की, जिससे उनमें परस्पर मनमुटाव पैदा हो गया और लगभग एक दर्जन राष्ट्रों ने इस क्षेत्र के बारे में लंबे चौड़े दावे करने शुरू कर दिए। इन दावों पर इतनी अधिक ले-दे हुई कि केवल वह क्षेत्र बिना किसी दावे के रह गया, जो पश्चिम-दक्षिणी ध्रुव महाद्वीप में 90° पश्चिम और 150° पश्चिम में था और पूर्वी महाद्वीप में 45° पूर्व और 20° पश्चिम के बीच था। सौभाग्यवश, दो महान राष्ट्रों, अमरीका और रूस ने इस महाद्वीप के किसी भी क्षेत्र पर अपना दावा नहीं किया। सन् 1957-58 से अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष मनाया गया जो दक्षिणी ध्रुव की खोज के इतिहास में नए युग का सूत्रपात था। यह वर्ष मनाने के परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों में सहयोग की भावना उत्पन्न हुई और यह फैसला किया गया कि एक और वर्ष तक दक्षिणी ध्रुव महाद्वीप के बारे में अनुसंधान कार्यों में परस्पर सहयोग से काम लिया जाय। इस वर्ष के दौरान अनुसंधान कार्यों में तालमल अंतर्राष्ट्रीय दक्षिणी ध्रुव समिति के माध्यम से संभव हो सका, जिसका गठन 1958 में पेरिस में किया गया था। इस वर्ष की समाप्ति के बाद उन राष्ट्रों ने भी इस क्षेत्र पर अपने दावे नहीं किए जो इस अनुसंधान कार्य में लगे हुए थे। इस रवैये का परिणाम यह हुआ कि दक्षिणी ध्रुव संधि पर हस्ताक्षर करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। यह संधि 1 दिसंबर, 1959 को वाशिंगटन में की गई। संधि का काल 30 वर्ष का था। इस पर बारह देशों ने हस्ताक्षर किए, जिन्होंने इस महाद्वीप पर अपने अनुसंधान केंद्र स्थापित कर दिए थे। बाद में छह और देशों ने संधि पर हस्ताक्षर किए। हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों ने यह घोषणा कर दी कि वे अनुसंधान के परिणाम दूसरे देशों को बताने में कोई आनाकानी नहीं करेंगे। अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष संयुक्त रूप से वैज्ञानिक अनुसंधान करने का सबसे लंबा अंतर्राष्ट्रीय प्रयत्न था, जिसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि दक्षिणी ध्रुव का गहन अध्ययन किया गया। दक्षिणी ध्रुव संधि के अनुसार दक्षिणी समुद्र और उसके पास लगती भूमि का प्रयोग केवल शांतिपूर्ण प्रयोजनों के लिए करना अनिवार्य था। उस क्षेत्र में सैनिक अड्डे स्थापित करने, परमाणु हथियारों के परीक्षणों और परमाणु बिजली घरों का कचरा वहां पर फेंकने की मनाही थी।

हाल ही में भारत भी उन मुट्ठी भर देशों की श्रेणी में आ गया है जो दक्षिणी

ध्रुव के क्षेत्र में अनुसंधान कर रहे हैं। जहां तक इस क्षेत्र में अनुसंधान का संबंध है, 9 जनवरी, 1982 का दिन भारत के लिए एक महत्त्वपूर्ण दिन था। उस दिन 21 भारतीय वैज्ञानिकों का दल दक्षिणी ध्रुव पहुंचा। उसके नेता थे डाक्टर एस. जेड. कासिम, जो समुद्र विकास विभाग के सचिव थे। भारत ने इस अनुसंधान अभिमान के लिए नार्वे का **पोलर सर्कल** नाम का जहाज किराए पर लिया था। यद्यपि इस जहाज में हैलिकाप्टर थे, लेकिन अभियान दल के सदस्य 70° 3' दक्षिण और 41° 2' पूर्व के बीच तट पर उतरे। इस बर्फ भरे महाद्वीप में अपने प्रवास के दौरान भारतीय वैज्ञानिकों ने हिमविज्ञान, भू-विज्ञान, भू-चुंबकत्व, मौसम विज्ञान और समुद्र विज्ञान संबंधी प्रयोग किए। भारतीय दल ने तट से लगभग 90 किलोमीटर दूर अपना शिविर स्थापित किया। अभियान में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्था ने प्रमुख रूप से भाग लिया। इसमें भाग लेने वाले अन्य संगठन थे—भू-सर्वेक्षण विभाग, मौसम विभाग, राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला और भारतीय नौसेना। जो शिविर स्थापित किया गया था, उसका नाम 'दक्षिण गंगोत्री' रखा गया। जब यह दल लौटा तो अपने पीछे एक स्वचालित मौसम केंद्र और एक छोटा-सा कमरा छोड़ आया जिसमें भोजन, ईंधन और औषधियां थीं जिससे कि उस क्षेत्र में जाने वाले वैज्ञानिकों को आवश्यकता पड़े तो वहां पर शरण ले सकें। दक्षिण गंगोत्री पर इस अभियान दल ने तिरंगा लहराया और तांबे की एक प्लेट छोड़ आए, जिस पर भारत के सफल प्रयत्न का वर्णन था। नौसेना के दो हैलीकाप्टर कई घंटे तक उड़ान भरते रहे, जिससे कि शिविर के लिए अच्छा स्थल खोज सकें। उसके बाद वे सामान और वैज्ञानिकों को शिविर के स्थल तक लेकर गए। भारतीय दल ने यह भी पता लगाया कि माउंट ओब और माउंट लीना (जिनके बारे में पहले से पता था) के बीच एक और पहाड़ी थी जो अब समुद्र में डूब चुकी है। इस पहाड़ी का नाम माउंट इंदिरा रख दिया गया है।

अब यह प्रमाणित हो गया है कि दक्षिणी ध्रुव समुद्र में ऐसे बहुत से खाद्य पदार्थ मिलते हैं, जिनमें प्रोटीन की मात्रा बहुत होती है। उनमें से एक क्रिल नाम की मछली है। साथ ही वहां पर तेल और कई मूल्यवान खनिज पदार्थ मिलने की भी संभावना है। दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र के अनुसंधान में भारत का शामिल होना देश के भावी विकास के लिए एक अच्छा शकुन है।

हिंद महासागर का अभियान दल और अन्य सहकारी प्रयत्न

दूसरे विश्व युद्ध के बाद समुद्र में मानव की पैठ और अधिक हो गई और इस

क्षेत्र में अनुसंधान अधिक संगठित ढंग से किया जाने लगा। इस बात को भी समझ लिया गया कि यदि सभी राष्ट्र आपस में सहयोग करें तो समुद्र के अनुसंधान में अधिक लाभ हो सकता है। कारण यह है कि समुद्र किसी राष्ट्र की बपौती नहीं है। इसी बात को समझ कर विश्व भर में महासागरों के बारे में जानकारी इकट्ठी करने का एक और प्रयत्न किया गया। अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष (1957-58) में विश्व भर के समुद्र विज्ञानी इकट्ठे हो गए और उन्होंने एक महासागर, अटलांटिक महासागर का ब्यौरेवार सर्वेक्षण करने का निर्णय लिया। सन् 1957 में एक ब्रिटिश और तीन अमरीकी जहाज दक्षिण से उत्तर तक और फिर वापस यात्रा करने लगे। अपने सर्वेक्षण के दौरान दोनों जहाजों ने कई बार अटलांटिक महासागर को पार किया और कई केंद्रों तक गए जहां पर पहले **मीटीअर** गया था। उधर रूस ने भी समुद्र विज्ञान की खोज में एक बड़ा कदम उठाया। उसके तो बड़े बड़े जहाज **विटिआज** और **आकदेमिक कुर्चातोव** अनुसंधान कार्य पर निकल पड़े। यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने भी अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष में सक्रिय भाग लिया। इस मिले जुले प्रयत्न का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था कि अटलांटिक महासागर का पहला व्यापक मानचित्र 'एटलस' तैयार किया गया।

विश्व के सभी राष्ट्रों ने मिलकर, परस्पर सहयोग से, एक और महान कार्य आरंभ किया। वह था अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान। इसका गठन यूनेस्को और अंतर्राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान आयोग ने मिल कर किया था। अटलांटिक और प्रशांत महासागर के विपरीत (जहां से होकर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तक पहुंचा जा सकता है) हिंद महासागर के चारों ओर भूमि ही भूमि है। हिंद महासागर से दक्षिणी ध्रुव तक तो पहुंचा जा सकता है, लेकिन और कहीं नहीं। इस कारण इस महासागर में कई विशेषताएं हैं। एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि जिन हवाओं को 'मानसून' की हवाएं कहा जाता है वे प्रत्येक दो वर्ष बाद अपनी दिशा बदल लेती हैं। यह महसूस किया गया कि हिंद महासागर का अध्ययन नहीं किया गया है और इसलिए यह आवश्यक है कि बहुत से राष्ट्र मिलकर सुसंगठित ढंग से यह काम करें।

इस अभियान के प्रारंभ होने से पहले हिंद महासागर के बारे में अन्य सागरों की तुलना में, बहुत कम जानकारी उपलब्ध थी। इस अभियान के परिणामस्वरूप हिंद महासागर के बारे में ज्ञान के भंडार में बहुत वृद्धि हुई है। इस अंतर्राष्ट्रीय अभियान में भारत समेत बीस राष्ट्रों ने भाग लिया। इसमें 38 जहाज और बहुत से अनुसंधानकर्ता थे। यह कार्यक्रम 1961 से 1965 तक चला। भारत के वैज्ञानिकों

ने इस अभियान में सितंबर, 1962 से दिसंबर, 1965 तक काम किया।

भारतीय अनुसंधानकर्ताओं के दल में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं के विद्वान थे। इनके कार्यकलापों का मार्ग दर्शन करने वाली संस्था थी, भारत की समुद्र अनुसंधान संबंधी राष्ट्रीय समिति। इस अभियान के लिए भारत के चार अनुसंधान जहाजों की व्यवस्था की गई। इनमें सबसे बड़ा जहाज था **आइ. एन. एस. किस्तना,** यह भारतीय नौसना का 90 मीटर लंबा युद्धपोत था, जिसमें समुद्र संबंधी अनुसंधान के उपकरण लगाए गए थे। इसके अतिरिक्त आर. वी. वरुण था जो भारत-नार्वे परियोजना का था और अब समेकित मत्स्य पालन परियोजना, कोचिन का है। एक और जहाज **आर. वी. कोच** था जो केरल विश्वविद्यालय का था। इसके अतिरिक्त भारत सरकार के खाद्य तथा कृषि मंत्रालय का जहाज **एफ. वी. बंगा** था। ये सारे जहाज **किस्तना** की तुलना में छोटे थे, लेकिन इनमें समुद्र संबंधी अनुसंधान के सारे उपकरण लगे हुए थे। लेखक को अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान में सक्रिय भाग लेने का मौका मिला और वह **किस्तना** ओर **कोंच** में कई बार यात्रा कर चुका है।

भारतीय दल ने समेकित और सर्वव्यापी अनुसंधान कार्यक्रम चलाया, जिसके अंतर्गत न केवल समुद्र विज्ञान के सभी पहलुओं की खोज की गई बल्कि मौसम का भी व्यापक अध्ययन किया गया। इस अंतर्राष्ट्रीय अभियान में भाग लेकर भारत ने बहुत लाभ उठाया। अंतर्राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान अनुसंधान में भाग लेकर और उसे राष्ट्र के लिए आवश्यक समझ कर ही भारत इस योग्य हुआ है कि उसने पणजी, गोवा के समुद्र विज्ञान की राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की है। इस अभियान का एक लाभ यह भी हुआ कि भारत में प्रशिक्षित समुद्र वैज्ञानिकों का एक दल तैयार हो गया। राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्था जनवरी, 1966 में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान की परिषद् के अंतर्गत प्रारंभ की गई। उसके बाद से इस संस्था का विस्तार किया गया है और इसके सात विभाग हैं—भौतिक समुद्र विज्ञान, रासायनिक समुद्र विज्ञान, जैविकी समुद्र विज्ञान, भू-भौतिकी और भू-भौतिकी समुद्र विज्ञान, सामुद्रिक उपकरण विभाग, सामुद्रिक इंजीनियरी और आयोजन तथा जानकारी विभाग। इस संस्था के कई प्रादेशिक केंद्र और इकाइयां हैं और उसका अपना एक अनुसंधान जहाज **आर. वी. गवेषणी** है। 1900 टन के इस जहाज में आधुनिक समुद्र विज्ञान संबंधी उपकरण, नौवहन और संचार उपकरण और उपग्रह दिशा निर्धारण उपकरण हैं जिससे कि यह पता चल सके कि जहाज कहां पर खड़ा है।

भारतीय समुद्र विज्ञान

यहां पर भारत में समुद्र संबंधी अनुसंधान के इतिहास की रूपरेखा देना अनुचित न होगा। सन् 1871 में कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय के एक अधिकारी, डाक्टर जे. वुड मेसन को अंडमान द्वीप समूह भेजा गया जिससे कि वे उस क्षेत्र के पशु पक्षियों और वनस्पति आदि का अध्ययन कर सकें। ब्रिटिश काल में भारतीय समुद्र में अनुसंधान का यह पहला उदाहरण है। सन् 1872 में भारतीय समुद्र सर्वेक्षण नामक संगठन बनाया गया जिसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में था। यह याद रखना चाहिए कि महान **चैलेंजर** अभियान, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, इसी काल में संगठित किया गया था। सन् 1881 में 580 टन का एक सर्वेक्षण जहाज **आर. आइ. एम. एस. इंवेस्टीगेटर** भारत के समुद्र सर्वेक्षण को दिया गया। सन् 1908 में इसके स्थान पर इसी नाम का एक और जहाज दिया गया, जिसका वजन 1078 टन था और जिसकी रफ्तार इससे कहीं अधिक थी। सन् 1910 में कर्नल आर. बी. एस. सेवेल प्रकृति विज्ञानी (सर्जन नैच्युरलिस्ट) के पद पर नियुक्त किए गए और यह कहा जा सकता है कि उन्होंने जो व्यापक अनुसंधान किए उन्हीं के परिणामस्वरूप भारत में समुद्र विज्ञान की नींव पड़ी। इसी कारण कर्नल सेवेल को भारतीय समुद्र विज्ञान का जनक कहा जा सकता है। सेवेल ने जो जानकारी इकट्ठी की वही आज भी भारत के आसपास के समुद्रों में जीव विज्ञान, रसायन शास्त्र, भौतिकी और मौसम विज्ञान संबंधी जानकारी का आधार है। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अनुसंधान कार्य बंद कर दिया गया और युद्ध समाप्त होते ही फिर शुरू किया गया। यह 1926 तक चला। इस अनुसंधान के परिणाम, हमारे देश में समुद्र विज्ञान संबंधी साहित्य की नींव हैं। ये परिणाम भारतीय संग्रहालय और रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल द्वारा प्रकाशित किए गए हैं।

कुछ और अभियान दल भेजे गए हैं जैसे कि 1928 से 1930 तक **डाना** अभियान दल, 1933 का **जोन मरे** अभियान दल और 1950 से 52 तक का **गलाथिया** अभियान दल। इन दलों के जहाजों ने हिंद महासागर में कई बार यात्रा की और समुद्र के संबंध में बहुत सी जानकारी इकट्ठी की। यह जानकारी भी कई खंडों में प्रकाशित हो चुकी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समुद्र की खोज के काम को और बल मिला, कारण यह था कि इस काम के लिए कई संस्थाएं स्थापित की गई, जैसे केंद्रीय समुदाय **मत्स्य पालन अनुसंधान संस्था** (जो पहले मंडपम में थी और अब कोचीन में) और **राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान प्रयोगशाला, कोचीन**। भू-भौतिकी के केंद्रीय बोर्ड ने एक समुद्र

विज्ञान शाखा बनाई जिससे कि समुद्र विज्ञान के भौतिकी पहलुओं का अध्ययन किया जा सके। आंध्र, केरल, कोचीन और अन्नामलाई विश्वविद्यालयों में समुद्र विज्ञान संबंधी अध्ययनों के लिए कई विभागों की स्थापना की गई। आजकल लगभग एक दर्जन विश्वविद्यालयों में समुद्र विज्ञान संबंधी विषयों की विशेष शिक्षा देने के लिए विभाग खोले गये हैं। उसी प्रकार समुद्र विज्ञान की राष्ट्रीय संस्था और केंद्रीय समुद्री मत्स्य पालन अनुसंधान संस्था (जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है।) के अतिरिक्त अन्य कई संस्थाएं हैं जिनमें तेल और प्राकृतिक गैस आयोग भी शामिल है। यह संगठन समुद्र विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन और अनुसंधान में आंशिक या पूर्ण रूप से लगे हुए हैं।

हाल ही में भारत सरकार ने प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियंत्रण के अंतर्गत समुद्र विकास विभाग की स्थापना की है। यह विभाग इसलिए बनाया गया है कि देश में समुद्र विज्ञान संबंधी अनुसंधान कार्यक्रमों में लगे संगठनों के काम में तालमेल रखेगा और उसके साथ ही समुद्री साधनों के आधार पर विकास के कार्यक्रमों का मार्गदर्शन करेगा। यह इन कामों के लिए वित्त की व्यवस्था भी करेगा। इस विभाग के सचिव हैं डाक्टर एस. जेड. कासिम जो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के समुद्र विज्ञानी हैं और राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्था के निदेशक रह चुके हैं।

3

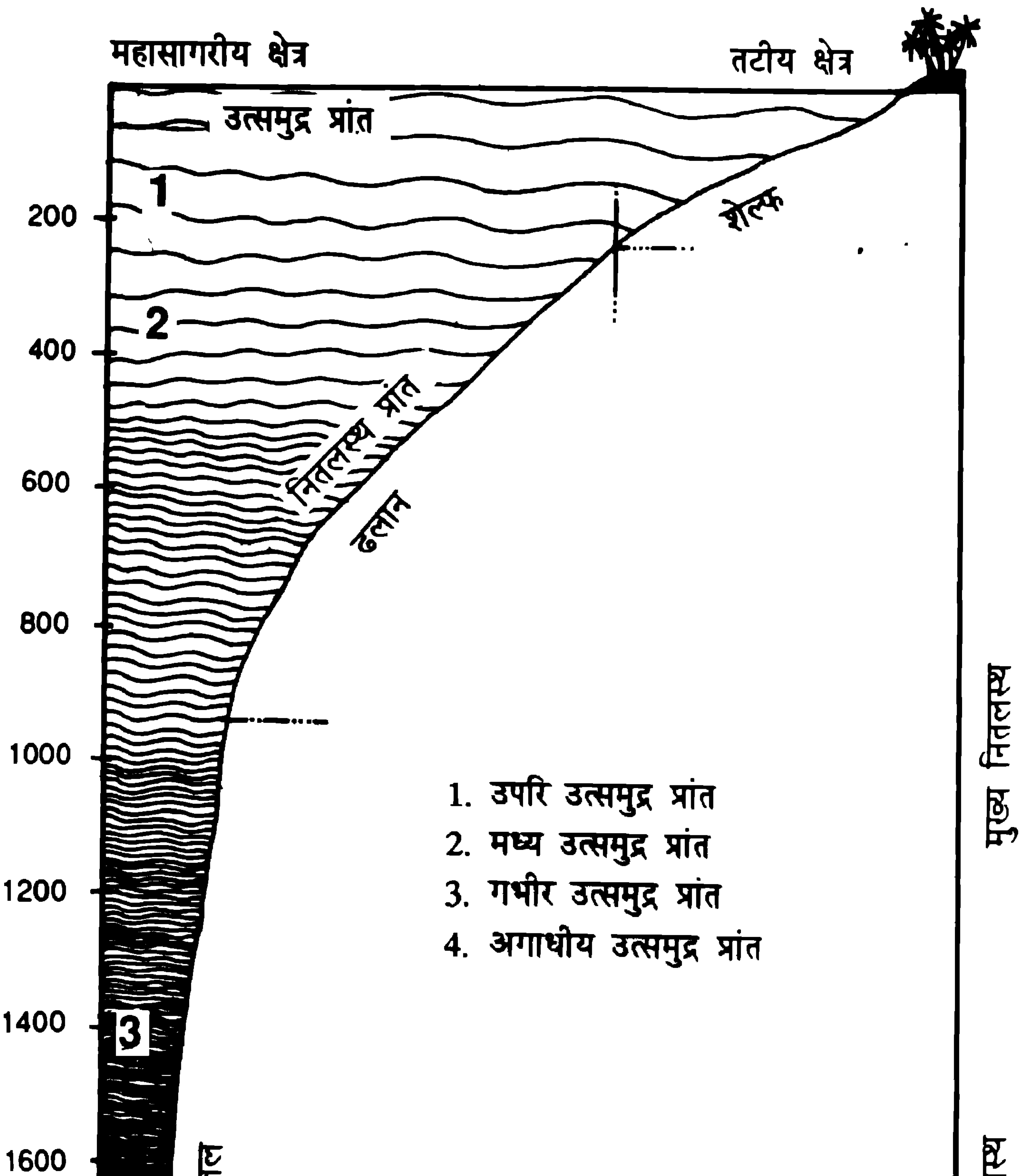
महासागरों के भौमिकीय और भौतिक पहलू

हम यह पहले ही कह आए हैं कि पृथ्वी का लगभग तीन-चौथाई भू-भाग जल में डूबा हुआ है। सच तो यह है कि हमारी पृथ्वी जल भरा ग्रह है और जिन महाद्वीपों पर हम रहते हैं, वे केवल बड़े द्वीप ही हैं जिनके चारों ओर समुद्र ही समुद्र है। मानव ने उन्हें अपनी सुविधानुसार महासागरों में बांट रखा है। इन महासागरों की सीमाएं अन्य महाद्वीपों की स्थिति के अनुसार तय होती हैं। निम्नलिखित महासागर इस पृथ्वी पर हैं (सारणी 1 तथा चित्र 5)

सारिणी 1

पांच महासागर	उनका क्षेत्रफल और गहराई क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)	औसत गहराई (मीटरों में)
अटलांटिक महासागर	105,229,900	3,920
प्रशांत महासागर	177,597,900	4,280
हिंद महासागर	74,049,290	3,950
उत्तरी ध्रुव महासागर	13,926,900	1,200
दक्षिणी ध्रुव महासागर	32,248,600	3,701

लेकिन सभी समुद्रों के जल एक दूसरे से मिलते हैं। न केवल एक समुद्र का जल दूसरे समुद्र में चला जाता है बल्कि उनमें पाए जाने वाले जीव और जड़ पदार्थ भी एक समुद्र से दूसरे समुद्र में पहुंच जाते हैं। लेकिन समुद्रों की स्थिति और उनके आसपास के देशों के कारण प्रत्येक महासागर की अपनी विशेषताएं हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं—जल का आवागमन, तापमान, उसमें नमक की मात्रा,



चित्र 5 : समुद्र तल और समुद्री जल के विभाग गहराई, प्रकाश की भीतर तक पहुंच आदि के आधार पर समुद्र तल को कांटीनेंटल शेल्फ, कांटीनेंटल ढलान और वितल में बांटा गया है। समुद्री जल के वर्ग भी दर्शाए गए हैं।

समुद्र तल की स्थिति, जीव जंतु औरं वनस्पतियां और आसपास के देशों पर समुद्र का प्रभाव।

'महासागर' शब्द के अतिरिक्त समुद्र, खाड़ी आदि शब्दों का प्रयोग भी होता है। इन शब्दों का प्रयोग किसी देश विशेष के निकट के समुद्रों के किसी भाग या उस भाग के लिए होता है जिसके चारों ओर भूमि के टुकड़े हैं। महासागरों के साथ कई छोटे आकार के समुद्रों के भी वर्ग हैं। उदाहरण के लिए भारत के आसपास के समुद्र (अरब सागर, लक्षद्वीप, कच्छ की खाड़ी, मन्नार की खाड़ी, पाक जलडमरूमध्य, बंगाल की खाड़ी, अंडमान समुद्र आदि।) मुख्य रूप से हिंद महासागर के ही सीमांत अंग हैं। सामान्य रूप से देखा जाय तो खाड़ियों और समुद्रों की विशेषताएं वही होती हैं जो उस महासागर की, जिससे उनका संबंध हो।

महासागरों की उत्पत्ति

भौमिकीय विद्वानों का विश्वास है कि महासागर लगभग तीन अरब साल पुराने हैं और स्वयं पृथ्वी की उत्पत्ति लगभग पांच अरब वर्ष पहले की है। सृष्टि की व्युत्पत्ति के गैस बादल प्रमेय के अनुसार (जिसे आजकल अधिकतर वैज्ञानिक स्वीकार करने लगे हैं) सबसे पहले ब्रह्मांड में गैस के बादल ही थे, जिन्होंने सूर्य और उसके आसपास घूमने वाले ग्रहों को जन्म दिया। कहते हैं कि सूर्य और इन ग्रहों की व्युत्पत्ति लगभग एक ही समय हुई। लेकिन सूर्य ही था जो अपने बहुत बड़े आकार के कारण इतनी गर्मी उत्पन्न कर सका कि वह अंतरिक्ष में आग के एक गोले के समान अभी तक बना हुआ है। सूर्य के आसपास चक्कर काटने वाले ग्रह धीरे धीरे अपना तापमान खोने लगे। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पृथ्वी का भी जन्म हुआ।

प्रारंभ की प्रक्रिया चली तो सागरों का निर्माण हुआ। जब तक पृथ्वी के तल पर तापमान 100° सेल्सियस से अधिक था तब तक जल भाप के रूप में ही रह सकता था जो बादलों के समान नवजात पृथ्वी को घेरे हुए थी। ज्यों ज्यों पृथ्वी का तापमान घटा, वायुमंडल में फैली हुई नमी जल बन गई और अनवरत वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरने लगी। जल पृथ्वी के गड्ढों में इकट्ठा होने लगा। वह अपने साथ ऊंचे स्थानों से घुलनशील पदार्थों को लेकर गड्ढों में पहुंच जाता था। लेकिन चूंकि पृथ्वी के नीचे की चट्टानें अभी तक बहुत गर्म थीं, उस पर गिरने वाला जल भाप बन कर वायुमंडल में पहुंच जाता था। यह प्रक्रिया करोड़ों वर्षों तक चली और तब जाकर समुद्रों ने जन्म लिया। समुद्रों में जल असंख्य नदियों

से आता था जो अपना रास्ता बदलती रहती थीं और जिनके जल के साथ पृथ्वी के तल पर पड़े लवण भी घुल कर आ जाते थे। जल के भाप बन कर उड़ जाने की प्रक्रिया लगातार चलती थी और इसलिए बिना नमक का पानी भाप बन कर समुद्र से उड़ जाता था। साथ ही जब नदियों का जल समुद्र से गिरता था तो अपने साथ वह और नमक ले जाता था। इस प्रकार समुद्र का जल नमकीन या खारा हो गया। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि समुद्र के जल को खारा होने में कई करोड़ वर्ष लगे।

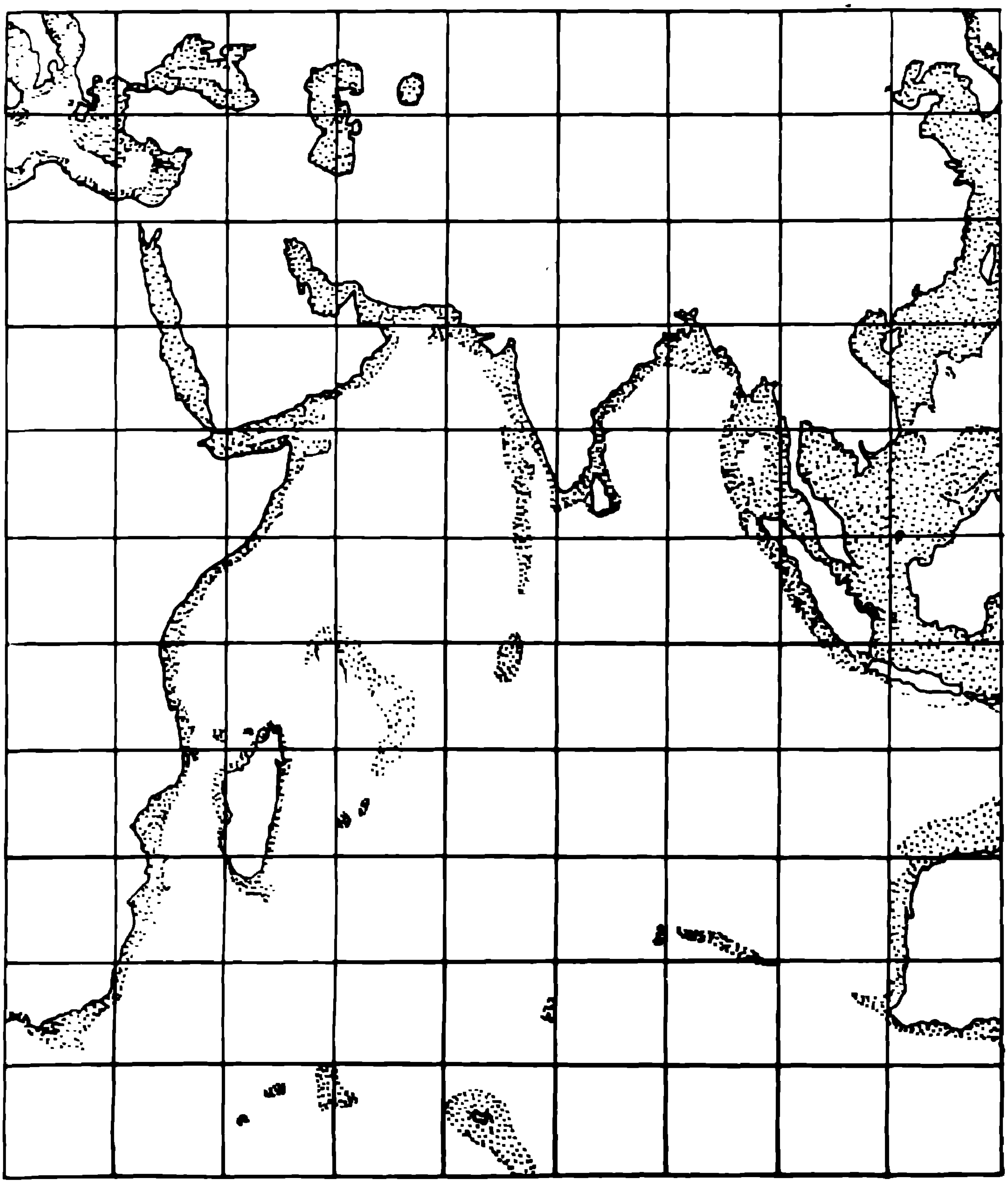
समुद्र के तल का इतिहास कहीं अधिक जटिल और उलझा हुआ है। आज यह बात सर्वविदित है कि भू-पटल में कई प्रकार की गतिविधियां हुई हैं। नए पर्वत बने हैं और भू-पटल से परिवर्तन के कारण बहुत बड़े बड़े गड्ढे भी बन गए हैं। इसी कारण समुद्रों की रूपरेखा और उनकी सीमाओं में भी बहुत से परिवर्तन हुए हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारे महाद्वीपों में परिवर्तन की प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। लेकिन पृथ्वी के विकास की अन्य प्रक्रियाओं के समान इस प्रक्रिया की गति इतनी धीमी है कि हम इसे देख नहीं पाते हैं।

समुद्र का तल भूमि के तल का ही अंग है, लेकिन वहां पर सदा जल खड़ा रहता है। कुछ समय पहले तक मानव को प्रत्यक्ष रूप से इस बात का ज्ञान नहीं था कि समुद्र तल की क्या स्थिति है। सच तो यह है कि समुद्र की गहराई नापने के लिए कई स्थानों पर सीसे या लोहे के भारी टुकड़े रस्सियों से बांध कर समुद्र में लटकाने पड़े। इस प्रकार यह अनुमान लगाया गया कि उसके आसपास के स्थानों पर भी समुद्र उतना ही गहरा होगा। सागर तल के स्वरूप को जानने के लिए मानव को केवल अनुमानों का सहारा लेना पड़ा।

लेकिन पिछली आधी शताब्दी में समुद्र तल के बारे में हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि हुई है। इसका श्रेय एक उपकरण के आविष्कार को जाता है जो गूंज के आधार पर गहराई का अनुमान लगा सकता है। समुद्र की गहराई इस प्रकार नापी जाती है कि एक ध्वनि उसके तल की ओर छोड़ी जाती है जिसकी गूंज के लौटने के समय को नाप कर यह पता लगाया जा सकता है कि समुद्र कितना गहरा है। और फिर इस उपकरण का यह भी लाभ है कि जब जहाज समुद्र में चलता है तो यह उपकरण गहराई को नापता जाता है। गहराई एक कागज पर अंकित होती जाती है। इस प्रकार हजारों जहाजों के समुद्र पर चलने से पता चल जाता है कि वह कहां पर कितना गहरा है। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे पास समुद्र

तल के ठीक ठीक मानचित्र हैं। इनके आधार पर भूमि के मानचित्रों के समान तीन आयाम वाले मानचित्र तैयार किये जा सके हैं। ध्वनि के सिद्धांत पर चलने वाला एक और उपकरण **सोनार** है जो न केवल अपने नीचे की गहराई में पड़ी वस्तुओं बल्कि आसपास की वस्तुओं का भी पता लगा सकता है। इससे न केवल मछुआरों बल्कि नौसेना के जहाजों को भी बहुत मदद मिलती है। सोनार की सहायता से यह पता चल जाता है कि जहाज के आसपास मछलियों के भंडार हैं या नहीं और यदि कोई पनडुब्बी हो तो उसका भी ज्ञान हो जाता है।



चित्र 6 : हिंद महासागर के महाद्वीपीय शेल्फ। हल्के रंग में जो क्षेत्र दिखाए गए हैं वहां पर इन शेल्फों की गहराई अपेक्षाकृत कम है।

महाद्वीपीय शेल्फ

महासागर के तल को तीन मुख्य भागों में बांटा जाता है—महाद्वीपीय शेल्फ, महाद्वीपीय ढाल और वितल (चित्र 6)।

यह विभागीकरण गहराई के आधार पर किया जाता है। कोंटीनेंटल शेल्फ वह क्षेत्र है जो तट के साथ लगता है। इस पर भूमि का प्रभाव सदा पड़ता रहता है और नदियों और वर्षा का जल जो पौष्टिक तत्व लाता है वे यहां बराबर जमा होते हैं। सूर्य का प्रकाश महाद्वीपीय शेल्फ के भाग में आता रहता है। इस शेल्फ की अधिकतम गहराई 200 मीटर मानी जाती है। इसकी चौड़ाई एक तट से दूसरे तट में अलग हो सकती है। भारत में पूर्वी तट पर यह शेल्फ सामान्यतया संकरा है, लेकिन पश्चिमी तट पर काफी चौड़ा है। गुजरात में महाद्वीपीय शेल्फ सबसे अधिक चौड़ा है और तट से 100 किलोमीटर से भी अधिक दूर तक फैला हुआ है। आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के तटों पर यह कुल पांच किलोमीटर है। महाद्वीपीय शेल्फ में जीव जंतु बहुत होते हैं। यहां पर पौधे और ज़ीव प्रचुर मात्रा में होते हैं क्योंकि उन्हें जीवित रखने के लिए कई प्रकार के पौष्टिक तत्व और सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है।

महाद्वीपीय ढाल

महाद्वीपीय ढाल के परे समुद्र की गहराई बहुत अधिक हो जाती है।

इस ढालू क्षेत्र को महाद्वीपीय ढाल कहा जाता है। यह ढलान बहुत अधिक होती है, जहां पर पौधे नहीं होते और उसके आगे समुद्र का तल होता है। महाद्वीपीय ढाल सभी स्थानों पर संकरा होता है और इसकी निचली ओर पठार और खाइयां होती हैं। पठार सामान्यतया उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट के साथ-साथ हैं और हिंद महासागर के कुछ भागों में भी हैं। संसार के कुछ और क्षेत्रों में महाद्वीपीय ढाल गहरी खाइयों में जाकर खत्म होते हैं। इन खाइयों की ओर ढाल बहुत तीखी या हल्की हो सकती है। खाइयां लंबाई में गड्ढों के रूप में होती हैं, जिनकी गहराई 600 मीटर से भी अधिक होती है। इनमें से अधिकतर प्रशांत महासागर में पाई जाती हैं। तीन महासागरों में खाइयों की सूची सारिणी 2 में दी गई है।

बहुधा महाद्वीपीय शेल्फों और ढालों के साथ साथ गहरे खड्ड भी होते हैं। ये खड्ड तटों के समानांतर नहीं होते जैसे कि पठार और खाइयां होती हैं बल्कि लंब के रूप में होते हैं। खड्ड शेल्फ से ही कहीं प्रारंभ होता है और ढाल से होता

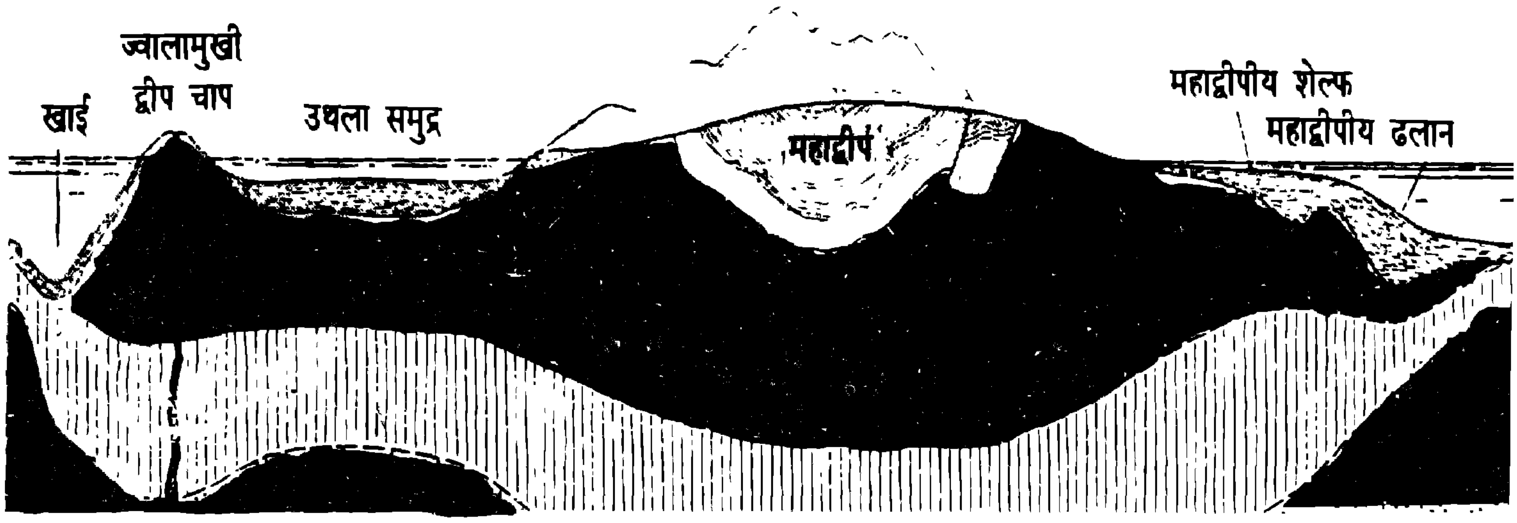
सारिणी 2
मुख्य खाइयां और उनकी गहराइयां

महासागर	*खाइयां*	*गहराई (मीटरों में)*	*गहराई (फुटों में)*
प्रशांत	मैरियाना खाई(चैलेंजर डीप)	11,035	26,780
	टांगा खाई	10,835	35,957
	कुराइल-कमचटका खाई	10,543	35,580
	फिलिपीन (मिंडानाओ) खाई	10,033	32,807
	करमाडेक खाई	10,003	32,809
	जापान (इडजू-बोनिन) खाई	9,800	32,153
	उत्तरी सोलोमन खाई	9,162	19,987
	न्यू हेब्रीडीज खाई	9,038	29,643
	याप (पश्चिमी कैरोलीन) खाई	8,602	28,216
	पालाओ खाई	8,142	26,707
	पीरी चिली खाई	8,057	26,427
	अलूशियन खाई	7,672	26,165
	नानसेशी शोटो (रयूक्यू) खाई	7,512	24,638
	मध्य अमरीका खाई	6,662	21,851
अटलांटिक			
	प्यूटोराइको खाई	9,392	30,184
	साउथ सैंडविच खाई	8,262	17,100
हिंद महासागर ●			
	सांडा खाई	7,252	24,442

हुआ सीधा समुद्र तल तक पहुंचता है। अमरीका के उत्तर-पूर्वी तट के साथ साथ ऐसे बहुत से खड्ड हैं जिनके मानचित्र तैयार किये जा चुके हैं। अन्य खड्ड कांगो, सिंधु और गंगा नदियों के पास और दक्षिणी कैलिफोर्निया के तट के समीप पाए जाते हैं। गंगा के साथ लगते हुए जो खड्ड हैं वे बंगाल की खाड़ी में सैकड़ों किलोमीटर तक नीचे चले गए हैं।

समुद्र तल

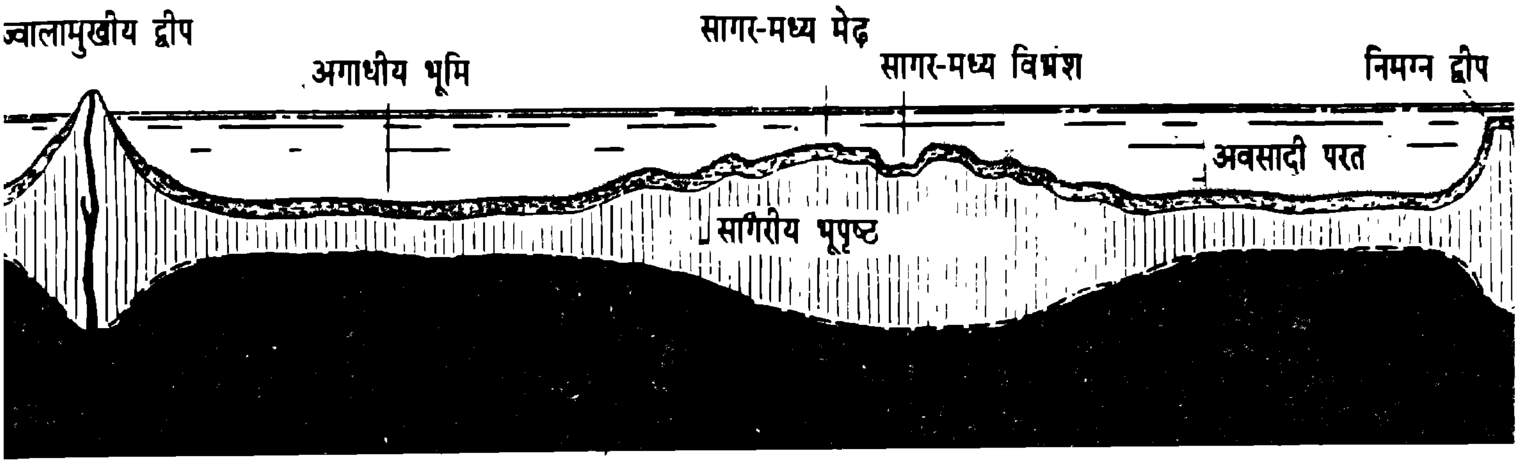
समुद्र का तल नाना प्रकार का होता है। उसमें समतल स्थान, पहाड़ियां, द्वीपों के क्षेत्र, सागर की उठान, माउंट, गयोट (निमग्न द्वीप) और सागर के मध्य की पहाड़ी मेढ़ें होती हैं। समुद्र तल, समुद्र के कुल क्षेत्र का 5/7 भाग और पृथ्वी के तल का आधा भाग अंतरिक्ष के समान जलमग्न क्षेत्रों में भी मानव की पैठ दस साल पहले



चित्र 7 : समुद्रतल, सागर के मध्य की पहाड़ी मेढ़ें, कांटीनेंटल शेल्फ, गयोट आदि।

तक नहीं थी। वह लगभग एक दशाब्दि पहले विशेष पनडुब्बियों की सहायता से समुद्र के तल तक पहुंचने में सफल हुआ। विभिन्न महासागरों में तल की विशेषताएं अलग अलग हैं।

हिंद महासागर और अटलांटिक महासागर के तल का एक तिहाई भाग और प्रशांत महासागर के तल का तीन चौथाई भाग समतल मैदानों जैसा है। इन मैदानों का अधिकतर भाग चपटा होता है और कहीं कहीं उनमें ऊबड़ खाबड़ स्थान मिलते हैं। समुद्र तल के मैदान भूमि के तल के सबसे अधिक समतल भाग होते हैं और बहुत बड़े क्षेत्र में फैले रहते हैं। समुद्र तल पर पाई जाने वाली पहाड़ियां छोटी और अंडाकार होती हैं जो उस तट के मैदानों के आसपास होती हैं। विश्वास किया जाता है कि ये पहाड़ियां प्रारंभ में बहुत बड़ी थीं, लेकिन धीरे-धीरे उनके आसपास इकट्ठी होने वाली रेत के कारण उनकी ऊंचाई कम हो गई है। यदि ये पहाड़ियां बड़ी हों, अलग-थलग हों और वहां भूचाल न आते हों तो उन्हें समुद्र की 'उठान' की संज्ञा दी जाती है। उनमें से कुछ इतना अधिक उठ सकती हैं कि पानी से ऊपर आ जाएं और फिर द्वीपों का रूप ले लें। ऐसी उठानों का एक उदाहरण बरमूदा में मिलता है। सी माउंट और निमग्न द्वीप पानी के नीचे डूबी चोटियां हैं, जो समुद्र तल से प्रारंभ होती हैं, लेकिन पानी से ऊपर नहीं पहुंचतीं। सी माउंटों में साधारण पहाड़ियों के समान चोटियां होती हैं, लेकिन निमग्न द्वीपों की चोटियां चपटी होती हैं। इन निमग्न द्वीपों को गयोट इसलिए कहा जाता है क्योंकि आर्नेल्ड गयोट नाम के सज्जन ने सबसे पहले इन दो प्रकार की चोटियों के बीच विभेद किया। (सी माउंट और गयोट की चोटियां सामान्यतया समुद्र तल से 1,000 से 1,500 मीटर तक की गहराई में पाई जाती हैं। यद्यपि सी माउंट सैकड़ों की संख्या में मिले हैं, और अब तक गयोट नाम की कुछ ही चोटियों का पता चला है। हिंद



महासागर अभियान के दौरान बंगाल की खाड़ी में कई गयोटों का पता चला। सी माउंट और गयोट ज्वालामुखी होते हैं और उन ज्वालामुखियों के फटने के परिणामस्वरूप ही समुद्र तल पर इनका निर्माण होता है। यह विश्वास किया जाता है कि गयोट वे पहाड़ियां थीं जिनकी चोटियां पानी से ऊपर निकली हुई थीं लेकिन लहरों ने उनको चपटा कर दिया है। बाद में ज्वालामुखियों के विस्फोट के कारण ये पानी के नीचे पहुंच गईं।

मुख्य खाइयों की यह विशेषता है कि उनके बाहरी किनारे समुद्र की ओर उठे होते हैं। बहुधा इनके ऊपर द्वीप बन जाते हैं। सच तो यह है कि अगर द्वीपों की कोई शृंखला उभर आए तो इसका यह मतलब है कि उनके नीचे कोई मेढ़ है जो लगातार फैली हुई है। जब इस प्रकार के द्वीप पाए जाते हैं, तो उन्हें आइलैंड आर्क (द्वीप चाप) कहा जाता है। इन चापों में बहुधा बड़े बड़े ज्वालामुखी होते हैं। द्वीप चापों और महाद्वीपों में, बड़ी खाइयों के पास, कई सक्रिय ज्वालामुखी पाए जाते हैं।

सागर-मध्य मेढ़

सागर-मध्य पर्वत मेढ़ें बहुत विशाल आकार की और लगातार फैले पर्वतों की शृंखलाएं हैं, जो महासागरों के तल पर होती हैं। यह तो हम जानते हैं कि पृथ्वी पर हिमालय की पर्वतमाला सबसे बड़ी पर्वतमाला है लेकिन अगर आप समुद्र के नीचे पाए जाने वाली पर्वतमालाओं को ध्यान में रखें तो उनके सामने हिमालय कुछ भी नहीं है। ये पर्वतमालएं 75,000 किलोमीटर से भी अधिक लंबी हैं और अटलांटिक महासागर, प्रशांत महासागर और हिंद महासागर के तल पर विद्यमान हैं। यह पर्वतमाला उत्तर और दक्षिण अटलांटिक महासागरों को बीच में काटकर

पूर्व और पश्चिम में स्थित अटलांटिक महासागर का रूप दे देती हैं। इनके कारण इन दोनों सागरों का जल इस पर्वतमाला के नीचे अलग अलग रहता है और ऐसा लगता है कि वे दो अलग अलग महासागरों का अंग है। यह पर्वतमाला समुद्र तल से औसतन 1,600 मीटर ऊंची है और अटलांटिक महासागर के पूर्वी और पश्चिमी भागों के बीच एक दीवार के समान खड़ी है। पर्वतमाला की कुछ चोटियां समुद्र के पानी से ऊपर उठी हुई हैं। वे कुछ द्वीपों का रूप धारण कर चुकी हैं जिनके नाम हैं—सेंट हेलेना, सेंट पाल असेंशन ओर अजोर्स।

सागर-मध्य मेढ़ें हिंद महासागर और प्रशांत महासागरों तक फैली हुई हैं। हिंद महासागर में इसे कालबर्ग मेढ़ कहा जाता है और यह अंग्रेजी के अक्षर वाई से मिलती जुलती है। यह दक्षिणी छोर से शुरू होती है और उत्तर की ओर फैल गई है। अरब सागर में पहुंचकर इसकी दो भुजाएं हो जाती हैं जिनमें से एक अरब और अफ्रीका की ओर जाती है और दूसरी गुजरात और पाकिस्तान के तटों की ओर। प्रशांत महासागर में मेढ़ का जो हिस्सा है उसे पूर्वी प्रशांत राइज कहा जाता है क्योंकि यह अमरीका के तट के अधिक समीप है। उत्तरी छोर पर यह कैलीफोर्निया के तट की ओर मुड़ जाती है और उसका दक्षिणी छोर दक्षिणी अमरीका के तट के आसपास अटलांटिक मेढ़ के साथ जा मिलता है।

सागर-मध्य मेढ़ इस बात का प्रमाण है कि हमारी पृथ्वी पर बहुत सी ऐसी चीजें हैं जो हमारी दृष्टि से ओझल हैं। सागर-मध्य मेढ़ें हिमालय की तुलना में 15 गुना से भी अधिक लंबी हैं लेकिन ये समुद्र में डूबी हुई हैं। उसी प्रकार समुद्र के नीचे खाइयां ऐसे भौगोलिक पहलू हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान बरबस चला जाता है। मैरियाना खाई की गहराई जल से 11 किलोमीटर नीचे तक है। यदि हम किसी प्रकार एवरेस्ट को उठा कर मैरियाना खाई के ऊपर रख दें तो वह (एवरेस्ट की ऊंचाई 8,300 मीटर या 29,002 फुट है) फिर भी जल के डेढ़ किलोमीटर नीचे रहेगी और जो भी एवरेस्ट को देखना चाहेगा उसे गोता लगाकर डेढ़ किलोमीटर से भी अधिक नीचे जाना पड़ेगा।

4

समुद्री जल के गुण

समुद्र का जो भाग हमें दिखाई देता है वह उसके जल का है और जो भाग नहीं दिखाई देता, वह उसका तल है जिसका क्षेत्रफल पृथ्वी के सारे क्षेत्रफल की तुलना में तीन गुना है। इसलिए पृथ्वी की रासायनिक संरचना के बारे में जो बात सच है वही समुद्र के तल पर भी लागू होती है। इसके अतिरिक्त समुद्री जल की रासायनिक संरचना का भी प्रश्न है। यह विषय इतना विशाल है कि इस छोटे से अध्याय में उसकी समीक्षा करना संभव नहीं है। यहां हम इस विषय पर एक उचटती सी दृष्टि डालेंगे।

समुद्री जल पृथ्वी पर सबसे अधिक साधारण रासायनिक सम्मिश्रण है और उसका परिमाण कल्पनातीत है। कहते हैं कि संसार के महासागरों में 33 करोड़ घन मील, (एक अरब 37 करोड़ घन किलोमीटर) जल है। समुद्र का जल खारा होता है, और यही उसकी विशेषता है। समुद्री जल में नमक की औसत मात्रा 3.5 प्रतिशत होती है। लेकिन नमक के इस तत्व का विवरण प्रतिशत में न देकर प्रति हजार प्रतिशत के अनुसार दिया जाता है। यदि समुद्री जल के एक घन किलोमीटर जल को भाप बना कर उड़ा दिया जाये तो चार करोड़ टन नमक मिलेगा और अगर सारे समुद्र सूख जाएं तो इतना नमक होगा कि उसे सारी पृथ्वी पर (समुद्रों समेत) फैला दिया जाए तो नमक की 160 मीटर मोटी तह जम जाएगी। देखा जाए तो हम जिस संसार में रहते हैं उसमें या तो जल है या नमक। वास्तव में हमें पृथ्वी को पृथ्वी न कहकर ओशियनों अर्थात् सागरों का पुंज कहना चाहिए। नमक के अतिरिक्त समुद्री जल में लगभग सौ और तत्व होते हैं लेकिन उनकी

मात्रा बहुत कम होती है। सारिणी 3 में बताया गया है कि समुद्री जल के एक घन किलोमीटर में विभिन्न तत्वों की कितनी कितनी मात्रा है।

यदि समुद्री जल को किसी देग में डाल कर उबाला जाय तो नीचे गाढ़ी तलछट

सारिणी 3
समुद्री जल की रासायनिक संरचना

आक्सीजन	36,81,05,500	टन	प्रोक्टेटीनियम	3.4	टन
हाइड्रोजन	12,20,62,350	टन	सिलीनियम	3.4	टन
क्लोरीन	2,14,62,830	टन	वैनाडियम	2.3	टन
सोडियम	1,18,70,500	टन	मैगनीज	2.3	टन
मैग्नीशियम	14,68,820	टन	टिटानियम	1.1	टन
सल्फर	10,16,780	टन	थोरियम	0.97	टन
कैल्शियम	4,50,840	टन	सैसियम	0.58	टन
पोटाशियम	4,29,260	टन	ऐंटीमनी	0.58	टन
ब्रोमाइन	73,381	टन	कोबाल्ट	0.55	टन
कार्बन	31,655	टन	निकल	0.55	टन
एंट्रोटियम	9,040	टन	सेरियम	0.43	टन
बोरोन	5,420	टन	यिट्रियम	0.34	टन
सिलिकोन	3,388	टन	चांदी	0.34	टन
फ्लोरिन	1,468	टन	लंथानम	0.34	टन
आर्गन	677	टन	क्रिप्टन	0.34	टन
नाइट्रोजन	564	टन	नियोन	0.34	टन
लिथियम	225	टन	बिस्मथ	204.3	किलोग्राम
रूबीडियम	135	टन	टंग्स्टन	101.3	किलोग्राम
फास्फोरस	79	टन	जेनोन	101.3	किलोग्राम
आयोडीन	56	टन	जर्मेनियम	60.8	किलोग्राम
इंडियम	23	टन	कैडमियम	55.8	किलोग्राम
जिंक	11	टन	क्रोमियम	50.4	किलोग्राम
लौह	11	टन	स्कैंडियम	40.5	किलोग्राम
एल्यूमिनियम	11	टन	पारा	30.0	किलोग्राम
मोलिबडेनम	11	टन	गैलियम	30.0	किलोग्राम
बोरियम	7	टन	टैलूरियम	10.4	किलोग्राम
सीसा	3.4	टन	निकोबियम	5.1	किलोग्राम
कलई	3.4	टन	हीलियम	5.1	किलोग्राम
तांबा	3.4	टन	सोना	4.1	किलोग्राम
संखिया	3.4	टन	रेडियम		लेशमात्र
			रेडन		लेशमात्र

सी रह जाएगी, जिसे ब्राइन कहा जाता है। इसी को सुखा कर नमक बनता है। नमक निकलने के बाद जो कुछ बच जाता है उसे बिटर्न कहते हैं। उसमें से मैग्नीशियम, ब्रोमाइन और कई अन्य रासायनिक पदार्थ तैयार किए जाते हैं। देखा जाय तो समुद्री जल से और कई लाभकारी पदार्थ निकाले जा सकते हैं, लेकिन उसमें खर्च इतना आता है कि उन्हें निकालने का कोई कष्ट नहीं करता। उदाहरण के लिए, यदि आप सोने के एक ग्राम का पांच सौवां हिस्सा समुद्री जल से प्राप्त करना चाहें तो आपको 45 लाख लीटर पानी सुखाना पड़ेगा।

समुद्र का जल ही है जो पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति और उनके बने रहने के लिए जिम्मेदार है। जल एक ऐसा मिश्रण है जिसमें जीवन बनाए रखने के गुण हैं और किसी तत्व में ये गुण दिखाई नहीं देते। पारे और पैट्रोलियम को छोड़कर जल ही एक ऐसा तरल पदार्थ है जो पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप में उपलब्ध होता है। जल में कुछ और भी गुण होते हैं जो जीवन को बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

(1) किसी अन्य तरल पदार्थ की तुलना में जल में सबसे अधिक पदार्थ घुल जाते हैं। (2) प्रकृति में जल ही ऐसा पदार्थ है जिसकी ऊष्मा सबसे अधिक है। (3) यह उन मुट्ठी भर सम्मिश्रणों में से है जो जम कर फैल जाते हैं। इसके अतिरिक्त समुद्री जल में नमक होता है जिसके कारण उसमें विशेष गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

जल में अधिक पदार्थ घुलते हैं

अन्य तरल पदार्थों की तुलना में जल में अधिक पदार्थ घुल जाते हैं। सच तो यह है कि यही एक कारण है कि समुद्रों का निर्माण हुआ है। जिन दिनों पृथ्वी का विकास हो रहा था (और यह प्रक्रिया करोड़ों वर्षों तक चली) कई प्रकार के लवण और अन्य रासायनिक पदार्थ जल में घुल गए। विकास के बाद के चरण में समुद्र के जल में नमक की मात्रा बढ़ी तो इसके दो कारण थे—पहला यह कि नए समुद्रों में आकर गिरा ताजा जल भाप बनकर उड़ जाता था तो बाकी बचे जल में नमक की मात्रा अधिक हो जाती थी। दूसरा कारण यह है कि बहुत से नदी नालों और वर्षा के जल के साथ और कई लवण और रासायनिक पदार्थ समुद्र के जल में आते रहते थे। अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष विश्व भर की नदियों से 27,000 घन किलोमीटर जल समुद्र में आ गिरता है जिसमें 40 करोड़ टन से अधिक लवण घुले हुए होते हैं।

अधिक विशिष्ट ऊष्मा

पृथ्वी की सारी ऊष्मा में जल की ऊष्मा का बड़ा महत्त्व है। जितनी ऊष्मा एक ग्राम जल के तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि करेगी, उससे एक ग्राम लोहे का तापमान दस डिग्री बढ़ाया जा सकता है। ऊंची विशिष्ट ऊष्मा का मतलब है ऊष्मा को समोए रखने की सामर्थ्य जब कि वह पदार्थ अपना तापमान अधिक न होने दे। उसके साथ ही एक और बात भी है और वह यह कि जल से ऊष्मा चली जाए तो उसका तापमान अधिक कम नहीं होता। अधिक विशिष्ट ऊष्मा के कारण समुद्री जल दिन में सूर्य की ऊर्जा का बहुत बड़ा भाग अपने में समो लेता है, लेकिन स्वयं बहुत गर्म नहीं होता है। यह ऊर्जा बहुत लंबी अवधि तक जल में बनी रहती है और जब वह जल उन भागों में जाता है जहां जल ठंडा है तो उस जल का तापमान बढ़ जाता है। लेकिन समुद्र का जल स्वयं अधिक ठंडा नहीं होता। इस प्रकार ऊंची विशिष्ट ऊष्मा के कारण समुद्र ऊष्मा का एक भंडार बन जाता है। जिसका प्रभाव विश्व भर में मौसम संतुलित रखने का होता है।

जब जल ठोस या गैस की शक्ल में होता है तब भी उसकी ऊंची विशिष्ट ऊष्मा का गुण दिखाई पड़ता है। जब जल जम कर बर्फ बन जाता है तो बहुत सी ऊष्मा ऊर्जा प्रदर्शित होती है और जब बर्फ पिघलती है तो वह ऊष्मा की बहुत बड़ी मात्रा को अपने में समो लेती है। इस प्रकार तरल से वाष्प की स्थिति में आने से ऊष्मा की बहुत बड़ी ऊर्जा काम में आ जाती है। जल न केवल हर तापमान पर वाष्प बन कर उड़ जाता है बल्कि इस प्रक्रिया में अधिक ऊष्मा ऊर्जा को बनाए रख सकता है। किसी अन्य तरल पदार्थ में यह गुण नहीं है। "जल को उसके सामान्य उबाल बिंदु पर एक ग्राम की मात्रा में लेकर वाष्प में परिवर्तित करना हो तो उतनी ही ऊष्मा चाहिए जितनी कि पांच सौ तीस ग्राम जल के तापमान को एक डिग्री सेल्सियस बढ़ाने के लिए जरूरी है, इसलिए वाष्पीकरण में बहुत बड़ी ऊष्मा की मात्रा लगती है। अनुमान लगाया गया है कि भूमध्य रेखा के आस पास प्रतिवर्ष वाष्पीकरण में दस लाख हार्स पावर प्रति वर्ग किलोमीटर शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न विधियों से हिसाब लगाकर यह पता लगाया गया है कि महासागर पर प्रतिवर्ष एक मीटर जल भाप बन कर उड़ जाता है... इस प्रकार समुद्र के जल की सतह पर जो जल भाप बन कर उड़ जाता है उसके दो लाभ होते हैं—एक तो यह कि जब वह भाप वायुमंडल में फैलती है तो ऊष्मा समुद्र से दूर हट जाती है और दूसरा यह कि वायुमंडल में वह वाष्प ऊष्मा को

इकट्ठा करती रहती है। वाष्प के रूप में जल समान्य जल की तुलना में अधिक गतिशील होता है। जो ऊष्मा एक स्थान पर जल में समा जाती है वह वायु के वेग से दूर दूर के स्थानों तक पहुंच जाती है। जब वही भाप जल बनती है तो उसमें छिपी हुई ऊष्मा बाहर आ जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी पर ऊष्मा के फैलने में जल के वाष्पीकरण का कितना योगदान है। वायुमंडल में जो भाप है उसे ऊष्मा का भंडार कहा जा सकता है" (आर. ई. कोकर : दिस ग्रेट एंड वाइड सी, पृष्ठ 164)।

जम कर जल फैल जाता है

जल का तीसरा महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि यह जमने पर फैल जाता है। इस गुण के कई परिणाम होते हैं। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के क्षेत्रों में तापमान बहुत कम होने के कारण वहां पर सदा बर्फ जमती रहती है लेकिन इस प्रकार बनी बर्फ समुद्र की सतह पर एक ठोस ढकने के समान तैरती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके नीचे का जो जल है उसकी ऊष्मा नष्ट नहीं होती। जब धूप निकलती है तो बर्फ सूर्य की ऊष्मा को जल की तुलना में अधिक परिमाण में और अधिक शीघ्रता से ग्रहण कर लेती है। इससे समुद्र की ऊष्मा का संतुलन फिर से स्थापित हो जाता है। और फिर क्योंकि समुद्र के नीचे जल ही रहता है, उन क्षेत्रों में जीव जंतुओं पर अधिक दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

हिमशैल (आइसबर्ग) प्राकृतिक बर्फ के बहुत बड़े बड़े टुकड़े होते हैं। जब उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पर सूर्य चमकने लगता है तो ये टुकड़े वहां से टूट कर जल में तैरते हुए उन क्षेत्रों की ओर चल देते हैं जहां गर्मी और नमक दोनों अधिक होते हैं। इस अजनबी परिवेश में हिमशैल आसानी से घुल जाते हैं और जल में नमक की मात्रा कम करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार बर्फ का जल में तैरते रहने का गुण जल के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने में सहायक होता है। जहां पर हिमशैल जाते हैं वहां के जल में नमक की मात्रा कम हो जाती है और जल का तापमान भी घट जाता है।

लवणता एक वरदान है

यह सच है कि समुद्र का जल नमकीन होता है और इसलिए वह न तो पीने के काम आ सकता है और न खेती बाड़ी के। लेकिन सच यह है कि अगर कहीं समुद्र का जल मीठा होता तो शायद संसार में जीव जंतुओं का अस्तित्व ही नहीं

रहता। पृथ्वी पर जीवन इस कारण संभव हुआ है कि उसके किसी भी भाग में प्राकृतिक परिस्थितियों में तापमान का परिवर्तन एक सीमा विशेष तक ही होता है। जलवायु इस कारण बदलती है कि महासागरों में जल के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की एक व्यापक और जटिल प्रक्रिया चलती रहती है। गर्म जल की धाराएं ठंडे प्रदेशों में जाती हैं और ठंडा जल ऊष्ण और कम ऊष्ण प्रदेशों में आता है। जिन धाराओं के माध्यम से समुद्र का जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है उसकी चर्चा हम किसी और अध्याय में करेंगे। समुद्र में जल की ये धाराएं केवल इस कारण उत्पन्न होती हैं कि समुद्र का जल खारा है। जल की लवणता सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है, जिसके कारण समुद्र का जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकता है। जब ऊष्ण कटिबंध में जल की सबसे ऊपर की तह सूर्य की गर्मी से गर्म हो जाती है तो वह आसपास के जल की तुलना में हल्की हो जाती है। इसके कारण तापमान का एक क्रम और लवणता का एक क्रम पैदा हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि जल आसपास के क्षेत्रों में जाने लगता है। उस जल के नीचे जो ठंडा और अधिक घना जल होता है वह ऊपर आ जाता है जिससे कि उस जल का स्थान ले सके जो वहां से किसी दूसरे क्षेत्र में चला गया है। समुद्र के एक भाग में जल गतिशील होता है तो उसका प्रभाव दूसरे भागों में भी यही होता है कि जल गतिशील हो जाता है। इस प्रकार सारे विश्व में समुद्रों का जल गतिशील होने लगता है। यदि सारे समुद्रों का जल मीठा होता तो लवणता का क्रम कभी न बनता, अर्थात् नमक के वाष्पीकरण से जल का घनत्व कम न होता और जल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाली धाराएं सक्रिय न होतीं।

परिणाम यह होता कि ठंडे प्रदेश बहुत ठंडे रहते और गर्म प्रदेश बहुत गर्म और भूमि का एक सीमित क्षेत्र ही इस योग्य होता कि लोग उसमें रह सकें। दूसरे शब्दों में जल ऊष्मा की मात्रा सीमित करने वाला तत्व हो जाता, संतुलन लाने वाला नहीं। यदि समुद्र का जल नमकीन न होता तो पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जाता और यदि लोग जीते भी तो बहुत कष्ट में जीते।

नमक सामान्यतया समुद्री जल को सुखा कर बनाया जाता है। समुद्र के जल को सुखा कर जो नमक प्राप्त होता है उसमें केवल सोडियम क्लोराइड, अर्थात् खाने का नमक ही नहीं होता, बल्कि अन्य तत्व भी होते हैं जो जल में घुल गए होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे तत्व भी होते हैं जो जल में घुलते तो नहीं लेकिन उसमें तैरते रहते हैं। सारिणी 3 में समुद्री जल में पाये जाने वाले रसायनों

का ब्यौरा दिया गया है और सारिणी 4 में यह बताया गया है कि समुद्र के जल में जो नमक होते हैं उनकी अलग अलग मात्रा कितनी है।

ये दस तत्व सामान्य लवणता के एक हजार भागों का 33.0 भाग हैं। बाकी 2.0 भाग प्रति हजार वे तत्व हैं, जिनकी चर्चा सारिणी 3 में की गई है। यदि समुद्री जल को एक हजार भाग मान लिया जाय तो उसमें से 35 भाग तो कई प्रकार के लवण के हैं और बाकी 965 भाग जल के।

विभिन्न क्षेत्रों और समुद्रों की विभिन्न गहराइयों पर लवणता की मात्रा कम या अधिक होती है। यह बात भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। लवणता ही समुद्री जल की गतिशीलता के लिए जिम्मेदार है और इसलिए इसकी मात्रा में होने वाले परिवर्तनों पर उन समुद्र विज्ञानियों का ध्यान जाता है जो रसायन शास्त्र की दृष्टि से इस पर विचार करते हैं। विभिन्न समुद्रों की अलग अलग विशेषताएं भी इसी कारण हैं कि उनके जल में लवणता की मात्रा कम या अधिक है।

सारिणी 4

समुद्री जल की संरचना, भाग प्रति हजार

तत्व	भाग प्रति हजार
क्लोरीन	18.98
सोडियम	10.56
मैग्नीशियम	1.27
सल्फर	0.88
कैल्शियम	0.40
पोटाशियम	0.38
ब्रोमीन	0.065
कार्बन	0.028
स्ट्रोंटियम	0.013
बोरोन	0.005

जल में तैरते तत्व

समुद्री जल में घुले हुए तत्व तो हैं ही (ये कार्बनिक भी हैं और अकार्बनिक भी), बहुत से तत्वों की भारी मात्रा समुद्र के जल में मिलती है, विशेष रूप से तटों के समीप। ये पदार्थ कई स्त्रोतों से आते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो भूमि से समुद्र तक पहुंचते हैं और इन्हें भूमिजात तत्वों की संज्ञा दी जाती है। भूमि से जो तत्व समुद्र तक पहुंचते हैं उनकी मात्रा बहुत विशाल है। इन तत्वों का जो अंश घुलनशील

होता है, वह कुछ समय बाद समुद्र के जल में घुल जाता है। जो तत्व घुल नहीं सकते वे जल की गति के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पहुंचते रहते हैं। बड़े आकार के ऐसे तत्व गुरुत्वाकर्षण के कारण समुद्र तल तक पहुंच जाते हैं। जो छोटे छोटे कण रह जाते हैं वे काफी समय तक जल में ही तैरते रहते हैं। उनकी मात्रा भिन्न भिन्न समुद्रों, जल की भिन्न भिन्न तहों और मौसम के अनुसार भिन्न भिन्न रहती है। भूमि से आने वाले जल तथा हवा और समुद्र में जल की धाराओं आदि का इन पर प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया जल में तैरते कण तटों के समीप और उन समुद्री क्षेत्रों में अधिक पाए जाते हैं जहां जल में बहुत अधिक उतार चढ़ाव होता है। भूमि से आने वाले तत्व समुद्र में पहुंचते तो हैं, लेकिन तट से अधिक दूर नहीं जा सकते। जल में तैरने वाले अन्य कण स्वयं समुद्र के पौधों और जीवों के बचे खुचे अंशों से आते हैं। भूमि के समान समुद्र में भी जन्म और मृत्यु का चक्कर चलता रहता है। खुले समुद्र में प्रति क्षण अरबों जीव मर जाते हैं और मृत्यु के बाद उनके शरीर के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। फिर गुरुत्वाकर्षण के कारण उनके अवशेष समुद्र की तह में जा बैठते हैं। उनके जो अंश जल में घुल सकते हैं वे तो समुद्र तल की ओर जाते हुए या वहां पहुंच कर जल में घुल जाते हैं। लेकिन बहुत से कण जल में तैरते रहते हैं जिसका कारण यह है कि जल ऊपर की ओर उठता है और उन्हें अपनी तह में नीचे बैठने नहीं देता। इस प्रकार जल में तैरते हुए कणों का नृत्य चलता रहता है। वे समुद्रों की हर गहराई में पाए जाते हैं।

भूमि से आने वाले पदार्थों के अतिरिक्त अन्य वस्तुएं भी हैं जो समुद्र में जा गिरती हैं। एक उदाहरण है आकाश से गिरने वाले तारों के खंडों का। आकाश से गिरने वाले तारों की संख्या उससे कहीं अधिक है जितनी कि हम समझते हैं।

जल में घुली हुई गैसें

समुद्री जल में घुले हुए या उसमें तैरते हुए तत्वों के अतिरिक्त कई गैसें भी पाई जाती हैं। जल में घुली हुई गैसों में सबसे अधिक महत्त्व की गैस आक्सीजन है। यह इस प्रकार आती है कि समुद्र की सतह और वायु मंडल की परस्पर क्रिया चलती है। हवाओं, लहरों और जल के गोलाकार संचलन के कारण इस प्रक्रिया में सहायता मिलती है। इस आक्सीजन का प्रयोग समुद्र में रहने वाले अरबों पौधे और जीव सांस लेने के लिए करते हैं। आक्सीजन का दूसरा स्त्रोत है, प्लवक (पलैंक्टन) और अन्य समुद्री पौधों की प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस) प्रक्रिया।

समुद्र के किसी भी भाग में जल में घुली हुई आक्सीजंन की कितनी मात्रा होगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि समुद्र में पलने वाले जीवों और पौधों द्वारा सांस लेने की प्रक्रिया और प्रकाश संश्लेषण या वायुमंडल के प्रभाव से जल में घुलने वाली आक्सीजन की प्रक्रिया के बीच संतुलन है या नहीं। समुद्र की सतह पर जल के एक लीटर में अधिकाधिक दस मिलीलिटर आक्सीजन होती है जो जल में घुली हुई होती है। जब वह जल नीचे की ओर जाता है तो समुद्री जीव उस आक्सीजन को सांस लेने के काम लेते हैं और फिर समुद्र की निचली तहों में जहां प्रकाश संश्लेषण नहीं हो पाता, इस आक्सीजन की कमी पूरी नहीं हो सकती। जिस स्तर पर आक्सीजन का प्रयोग और उसका उत्पादन संतुलन की स्थिति में होता है, उसे प्रतिकर गहराई (कंपंसेशन डेप्थ) कहा जाता है।

दो और गैसें, जो जल में घुल जाती हैं, नाइट्रोजन और कार्बन डाइआक्साइड हैं। नाइट्रोजन इस कारण घुल जाती है कि वायु का समुद्र की सतह के जल पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन नाइट्रोजन पृथ्वी पर हो या समुद्र के जल में, उसका प्रयोग कोई जीव जंतु नहीं कर सकता। कार्बन डाइआक्साइड अपने घने रूप में उपलब्ध नहीं होती क्योंकि पौधे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रियाओं के लिए उसे सदा समाप्त करते रहते हैं। "समुद्र में कार्बन डाइआक्साइड कई रूपों में उपस्थित होती है : (1) घोल के रूप में, CO_2 के रूप में, (2) कार्बनिक एसिड, $H_2 CO_2$, के रूप में कम मात्रा में (3) HCO_3 के रूप में असंबद्ध कार्बोनिक एसिड के रूप में, (4) हल्के घुलनशील कार्बोनेट के रूप में, और (5) अधिक घुलनशील बाइकार्बोनेट के रूप में। कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट इसलिए संभव होते हैं कि आधार तत्व, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि समुद्र के जल में स्थायी तेजाबी तत्वों से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। आधारभूत तत्वों की यह अधिकता 'अलकली रिजर्व' है जो कार्बोनिक एसिड के साथ मिल कर पौधों के लिए CO_2 की मात्रा बनाये रखने में सहायक होती है। कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) स्थायी या अस्थायी तत्वों के साथ मिल कर समुद्र के जल में तेजाब के आधार को बनाए रखने और जीवन के सभी रूपों के लिए अनुकूल परिवेश बनाए रखने में सहायक होती है। यद्यपि समुद्री जल के एक लिटर में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा एक घन सेंटीमीटर के दसवें भाग से तनिक अधिक होती है। पांच से दस घन सेंटीमीटर आक्सीजन की तुलना में समुद्री जल में 45 से 50 घन मीटर मुक्त आक्सीजन उपलब्ध होती है। आधारभूत तत्वों की अधिकता का दो तिहाई भाग बाईकार्बोनेट के रूप में होता है लेकिन यह स्थिर नहीं होता और इस कारण आवश्यकता पड़ने पर

पौधों के लिए इससे कार्बन डाइआक्साइड उपलब्ध हो जाता है। परिणाम यह होता है कि समुद्री जल में CO_2 और आधारभूत तत्वों के बदलते हुए मिश्रणों के कारण पौधों के लिए आक्सीजन काफी मात्रा में उपलब्ध होती है। CO_2 में कुछ तत्व मिलते रहते हैं या उससे अलग होते रहते हैं" (कोकर या पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 88)।

जिस प्रकार भूमि पर ऊष्मा का स्त्रोत सूर्य है उसी प्रकार समुद्र में भी ऊष्मा सूर्य ही के कारण होती है। सबसे अधिक ऊष्मा ऊष्ण कटिबंध के क्षेत्रों में और सबसे कम दोनों ध्रुवों पर होती है। जो ऊष्मा जल का अंग बन जाती है, वह दूसरे क्षेत्रों तक पहुंच जाती है और जल की दूसरी तहों तक भी पहुंचती है। तापमान का प्रभाव समुद्री जल की लवणता, उसमें घुली हुई गैसों और उसके अन्य रासायनिक गुणों पर पड़ता है। सच तो यह है कि तापमान इन सभी रासायनिक गुणों के बीच स्पष्ट संबंध है। उदाहरण के लिए, तापमान जितना अधिक होगा, समुद्री जल में गैसों की मात्रा उतनी ही कम होगी। जब तापमान बढ़ जाता है तो जल में घुली हुई गैसों की मात्रा कम हो जाती है। परिणाम यह होता है कि दोनों ध्रुवों पर समुद्री जल में आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड ऊष्ण कटिबंध के क्षेत्रों की तुलना में बहुत अधिक होती है। तापमान के साथ लवणता भी कम हो जाती है। लेकिन इन दोनों तत्वों में परस्पर संबंध बड़ा जटिल है और इन दोनों पर विचार करें तो पता चलता है कि जल की किसी भी मात्रा में यही विशेष गुण है। समुद्र की सतह पर एक जैसे अक्षांशों और दिन के किसी भी समय तापमान लगभग एक जैसा होता है लेकिन गहराई के साथ साथ तापमान घट जाता है। गहराई के कुछ वर्ग में जल की मात्रा में तापमान में जो परिवर्तन तेजी से होता है उसे 'थर्मोक्लाइन' की संज्ञा दी गई है। उस स्थिति तक पहुंचने के बाद, उस स्तर के नीचे तापमान में परिवर्तन बहुत कम होता है। थर्मोक्लाइन का समुद्री जल के रासायनिक गुणों और जल के नीचे गतिशीलता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव न केवल समुद्र में पाए जाने वाले जीव जंतुओं पर पड़ता है बल्कि पनडुब्बियों में यात्रा करने वाले मानवों पर भी।

समुद्र की अर्थव्यवस्था के लिए इस बात का अत्यधिक महत्त्व है कि उसके जल में किस प्रकार के तत्व घुले हुए हैं और कौन से पदार्थ उस जल में तैर रहे हैं। उनकी मात्रा पर ही यह बात निर्भर करती है कि उस जल में जीव जंतु होंगे या नहीं और होंगे तो कितने होंगे। पौधों की लगातार उत्पत्ति से जल की ऊपरी तहों में पौष्टिक तत्वों का ह्रास होने लगता है। तट के पास उनकी कमी इस कारण

पूरी हो जाती है कि भूमि का जल समुद्र में गिरता रहता है। दूसरे क्षेत्रों में होने वाली उथल पुथल और दूसरे क्षेत्रों से आने वाले जल की धाराओं और अन्य प्राकृतिक घटनाओं से, जो समुद्र में घटती रहती हैं, इन पौष्टिक तत्वों की कमी पूरी हो जाती है। लेकिन समुद्र में बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं, जहां पौष्टिक तत्वों की कमी को पूरा करने की कोई व्यवस्था नहीं है और इसलिए वहां पर जीव जंतुओं की उत्पत्ति नाममात्र को होती है। ऐसे समुद्री क्षेत्रों को 'समुद्री मरुस्थल' कहा जाता है। सबसे अधिक प्रसिद्ध समुद्री मरुस्थल अटलांटिक महासागर में सरगोसा समुद्र है जहां पर जल की गति नहीं होती और जीव जंतु नहीं हैं। जल में तैर रहे तत्वों का प्रभाव भी समुद्र की उत्पादकता पर पड़ता है। यदि ऐसे तत्वों की मात्रा बहुत अधिक हो, तो सूर्य की किरणें जल में प्रविष्ट नहीं हो सकतीं, बल्कि बिखर जाती हैं। इस कारण समुद्र में पौधों और जीवों की उत्पत्ति कम हो जाती है। यदि जल में तैर रहे तत्व बहुत अधिक मात्रा में हों, तो समुद्री जीवों को सांस लेने में भी कठिनाई होती है।

आजकल बहुत कम रासायनिक तत्व हैं जो समुद्र से निकाले जाते हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है मैग्नीशियम, जिसका प्रयोग विमानों के निर्माण में होता है। इस धातु की बहुत बड़ी मात्रा विश्वभर के समुद्रों से निकाली जाती है। ब्रोमाइन भी काफी मात्रा में समुद्र से निकाली जाती है। इसका प्रयोग रंगों, फोटोग्राफी में काम आने वाले रसायनों, गैसोलीन आदि में होता है। समुद्री शैवाल से आयोडीन निकाला जाता है।

"हजारों वर्षो से पृथ्वी पर वर्षा हो रही है और उसका जल पौष्टिक तत्वों को घुला कर नदियों के माध्यम से समुद्र में गिराता रहा है। इस प्रक्रिया के कारण जल में घुल सकने वाले संसार के सभी पौष्टिक तत्वों का भंडार समुद्र में जा पहुंचा है जो कभी समाप्त नहीं होगा। इनमें से कुछ पौष्टिक तत्व तो ऐसे होते हैं जिनसे हम परिचित हैं, जैसे स्थिर नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश, लेकिन बहुत से अन्य तत्व भी समुद्र के जल में मिलते हैं, जिनकी मात्रा बहुत कम होती है जैसे आयोडीन, फिल्योरीन, बोरोन, मैगनीज, तांबा, जस्ता और अन्य कई तत्व जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। ये सभी तत्व समुद्र के जल में होते हैं और इतनी अधिक मात्रा में होते हैं कि यदि पृथ्वी के सभी निवासी समुद्र से ही सारे रासायनिक पदार्थ ले लें या वे सारे रासायनिक पदार्थ समुद्र में फेंक दें, जो उनके पास हैं तो भी समुद्री जल की संरचना में कोई परिवर्तन नहीं होगा। समुद्र में पाए जाने वाले पौधों और जीव जंतु इन तत्वों को ग्रहण करते हैं और अपने में जमा करते चले जाते

हैं। जब तक इन्हें समुद्र तट पर लाते हैं तो ऐसे तत्वों की एक नगण्य मात्रा हमारे हाथ लगती है, जो पृथ्वी से ही समुद्र में गए हैं। समुद्र में न केवल संसार के पौष्टिक तत्त्वों का अथाह भंडार है, बल्कि उन तत्वों की गुणवत्ता भी सबसे अधिक है" (हार्डेन एफ टेलर : रिसर्च एंड रीजनल वैल्फेयर)।

5

अशांत जल

सागर का जल सदा गतिशील रहता है। सच तो यह है कि समुद्री जल गतिशीलता का प्रतीक कहा जा सकता है। समुद्र शांत भी हो तो भी उसके जल में छोटी छोटी लहरें दिखाई पड़ती हैं जिनमें जल के कण धीरे धीरे परंतु अनवरत रूप से हिलते रहते हैं। जो लोग समुद्र तट पर रहते हैं उन्हें पता है कि किस प्रकार कभी कभी उसमें भीषण लहरें और उफान उठा करते हैं। लेकिन जो समुद्र तट से परे रहते हैं और जिन्होंने केवल नदी नाले देखे हैं उनके लिए समुद्र के जल की अपार मात्रा और उसकी निरंतर गतिशीलता की कल्पना करना कठिन है। यदि आप किसी जहाज या नाव में यात्रा करें तो ऐसा लगता है कि मानों आपके निचले पैरों के नीचे की भूमि में भूचाल आया हुआ है, क्योंकि जहाज का पैंदा सदा हिलता रहता है।

यदि आप समुद्र तट पर जाएं तो उफान वाला जल छोटी छोटी लहरों में आपके पांव धो जाएगा। जिस जल से पांव गीले हो जाते हैं वह एक़दम भाप बन कर उड़ जाता है। और परियों की कहानी की नायिकाओं के समान अदृश्य हो जाता है। लेकिन यही कहानी है जो समुद्र जल का प्रत्येक कण आपको सुनाने की चेष्टा कर रहा है। आपके पैरों को धोने से पहले जल के यही कण अरब सागर, अटलांटिक महासागर या बर्फ से भरे उत्तरी ध्रुव से आए हो सकते हैं। इन जल कणों का इतिहास अनादि और अनंत हो सकता है। ये उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव में जमी बर्फ के रूप में रहे हों या ऊष्ण कटिबंध में भाप के रूप में विद्यमान रहे हों, उन्होंने अपनी इस अनंत यात्रा में पृथ्वी को अदृश्य छुआ होगा जब वे वर्षा के रूप में

गिरे होंगे और किसी तूफानी नाले के माध्यम से समुद्र तक पहुंचे होंगे। समुद्री जल की कहानी अंतहीन पुनर्जन्मों की ओर अनंत यात्राओं की कहानी है।

समुद्र के जल की गतिशीलता का दृष्टांत एक घटना है, जो 1850 में घटी। उस वर्ष **ग्रिफ्टन** नाम का एक जहाज भूमध्य सागर से अटलांटिक महासागर में प्रविष्ट हो रहा था और उसे अटलांटिक महासागर में ही लंबी यात्रा पर निकलना था। जहाज में कुछ मरम्मत करनी थी इसलिए उसके कर्मचारियों को एक दिन की छुट्टी दे दी गई। उन नाविकों ने देखा कि जिब्राल्टर के तट पर लकड़ी का एक टूटा फूटा बक्सा पड़ा है जो आधा रेत में दबा हुआ था। खोल कर देखा गया तो उसमें कई नारियल के खोल थे, जिन पर गोथिक लिपि में एक संदेश खुदा हुआ था। यह संदेश कोलंबस ने स्पेन की महारानी को भेजा था। यह बक्सा अटलांटिक महासागर के दूसरी ओर आठ हजार किलोमीटर दूर, लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहले समुद्र में फेंका गया था। बक्सा फेंकने वाले स्वयं कोलंबस थे, जिससे कि नारियल के गोलों पर खुदी जानकारी किसी दिन स्पेन के तट पर पहुंच जाए। हैरानी की बात है कि यह बक्सा अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुंच भी गया। अपने संदेश में कोलंबस ने **सांटा मारिया** नाम के जहाज के डूबने और दूसरे जहाज **नीना** के नाविकों में अनुशासनहीनता की सूचना स्पेन की महारानी को दी थी। यह संदेश महारानी या राजवंश तक तो नहीं पहुंचा लेकिन साढ़े तीन शताब्दी बाद **ग्रिफ्टन** नाम के जहाज के नाविकों के हाथ लग गया।

आप आमतौर पर देखते होंगे कि नावें जब नदी पार करती हैं तो दूसरे किनारे पर तनिक नीचे को जाकर तट पर लगती हैं। इसका कारण यह है कि नदी का जल उन्हें नीचे की ओर ले जाता है। अगर जहाज समुद्र की सतह पर जल की सशक्त धाराओं में फंस जाए तो उसके साथ भी यही होता है। ऐसी धाराएं समुद्र की सतह पर बहुधा चला करती हैं। उनकी चर्चा आगे चल कर की गई है। इन धाराओं को समुद्री नदियां कहा जाता है, तो ठीक ही है, क्योंकि इनके माध्यम से जल की बहुत बड़ी मात्रा पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचती है और हम यह कह सकते हैं कि समुद्र सच्चे अर्थों में सारे संसार को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति है। यदि हम समुद्री जल की अशांति के कारण खोजें और यह पता लगाएं कि यह जल क्यों शांत नहीं रहता तो हम यह पायेंगे कि समुद्रों की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई उसके परिणामस्वरूप उनके जल का अशांत रहना अनिवार्य है। जो तत्व समुद्र के जल की निरंतर गतिशीलता के लिए जिम्मेदार हैं उन्हें तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—

(क) पृथ्वी के घूमने से उत्पन्न हुई गति,

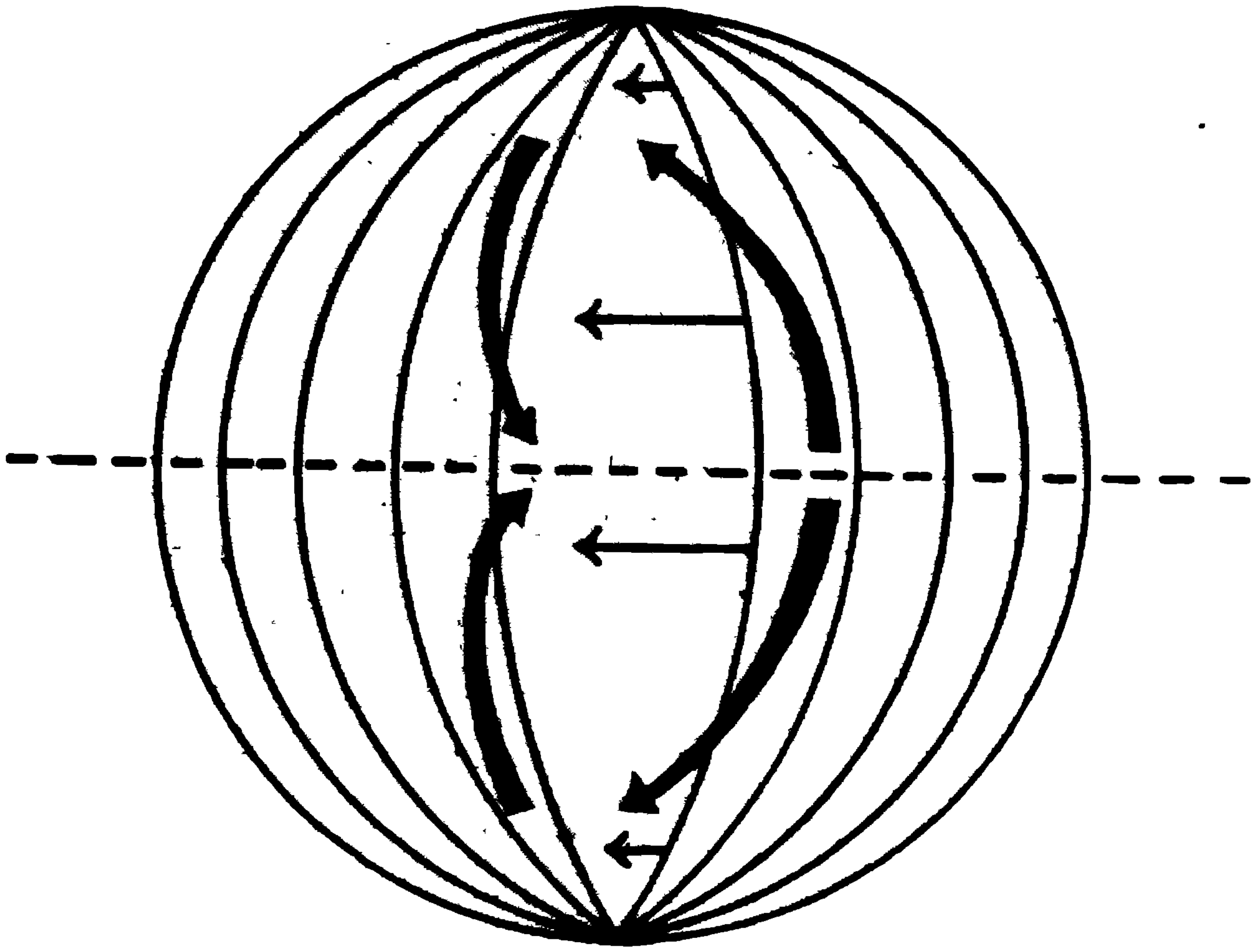
(ख) सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण से उत्पन्न हुई गति, और

(ग) सूर्य की गर्मी से उत्पन्न हुई गति, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष भी है और अप्रत्यक्ष भी।

पृथ्वी के घूमने से उत्पन्न हुई गति

पृथ्वी अपने अक्ष पर सदा घूमती रहती है और चौबीस घंटे में एक चक्कर पूरा कर लेती है। इसकी गति 1,500 किलोमीटर प्रतिघंटा है और यह पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। इसके घूमने से समुद्रों की सतह पर उसी दिशा में तनाव पैदा होता है। अधिकाधिक तनाव भूमध्य रेखा पर होता है जहां पृथ्वी सबसे अधिक चौड़ी है और वहां पर, जैसा कि हम बाद में देखेंगे, जल का स्तर अन्य स्थानों की अपेक्षा तनिक ऊंचा होता है। क्योंकि सतह पर जो दबाव पड़ता है उसकी दिशा पूर्व की ओर होती है। भूमध्य रेखा पर समुद्र के जल में उसी दिशा में घूमने की प्रवृत्ति रहती है। उसकी प्रतिकारक प्रवृत्ति यह है कि भूमध्य रेखा के दोनों ओर का जल विपरीत दिशा में चल पड़ता है। पूर्व से पश्चिम की ओर चलने वाली इन दो मुख्य धाराओं को उत्तर और दक्षिण भूमध्य रेखा धाराएं कहा जाता है। इन धाराओं को समुद्रों के जल में गतिशीलता के प्रारंभिक बिंदु कहा जा सकता है। लेकिन ये पूर्व-पश्चिम धाराएं मात्र नहीं हैं। "भूमध्य रेखा पर पृथ्वी की गति एक हजार मील प्रति घंटा होती है, इसलिए इसमें यह प्रवृत्ति रहती है कि समुद्र के नीचे से आगे निकल जाए और उसे पीछे छोड़ जाए, क्योंकि पृथ्वी पूर्व की ओर घूमती है। जल में यह प्रवृत्ति रहती है कि वह समुद्रों के पश्चिमी तटों पर इकट्ठा हो जाता है। परंतु बात यहीं पर खत्म नहीं हो जाती। हवा और जल पर और वास्तव में चलते फिरते सभी पदार्थों पर, वह नाव हो, कोई राकेट या कि फैंकी गयी गेंद, पृथ्वी के घूमने का बड़ा अजीब प्रभाव पड़ता है। वह प्रभाव यह है कि वे उत्तरी गोलार्द्ध में तनिक दायीं और मुड़ जाते हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में बाईं ओर। इसे 'कोराइटिस प्रभाव' की संज्ञा दी गई है। यह नाम फ्रांसीसी गणितज्ञ के नाम पर रखा गया है जिसने एक शताब्दी से भी अधिक पहले इस प्रभाव का वर्णन किया गया था" (ऐंगल : **दि सी,** टाइम-लाइफ बुक्स, पृष्ठ 76) (चित्र 8)।

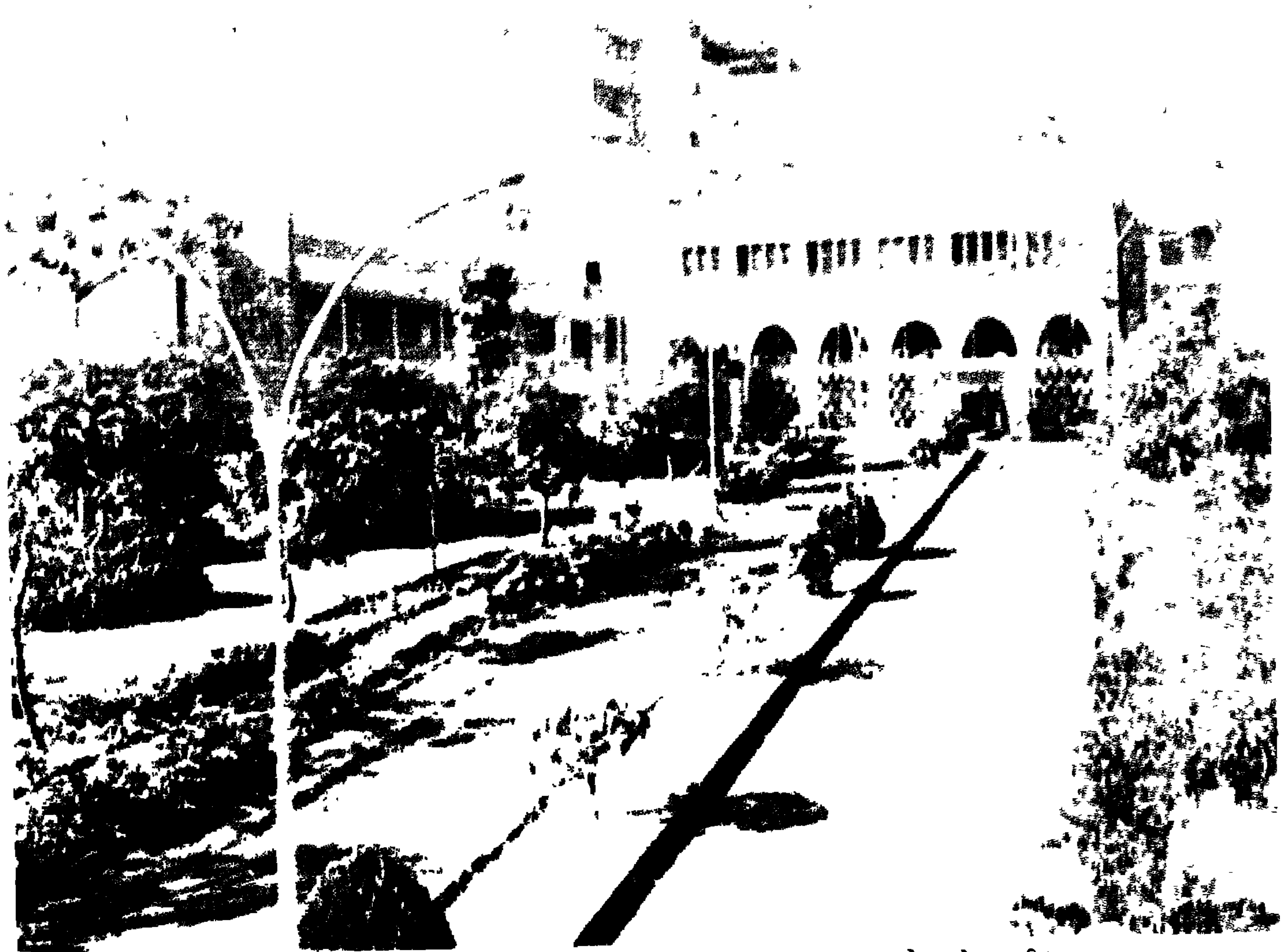
यदि आप संसार का मानचित्र देखें तो यह पाएंगे कि भूमि के टुकड़े दो बड़े बड़े खंडों में हैं। एक में उत्तरी और दक्षिणी अमरीका आ जाता है और दूसरे में



चित्र 8 : कोराइटिस बल

अफ्रीका और यूरेशिया। यदि हम अटलांटिक महासागर का ही मामला लें तो देखेंगे कि उत्तर और दक्षिण भूमध्य रेखा की धाराओं का पानी उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के पूर्वी तटों के पास इकट्ठा हो जाता है। यह इकट्ठा हुआ पानी कोराइटिस प्रभाव और तटों की प्राकृतिक स्थिति के कारण भूमध्य रेखा के उत्तर और दक्षिण की ओर चल पड़ता है। उत्तर की ओर जाने वाली धारा को **गल्फ स्ट्रीम** कहा जाता है और दक्षिण की ओर जाने वाली धारा को **ब्राजील** धारा।

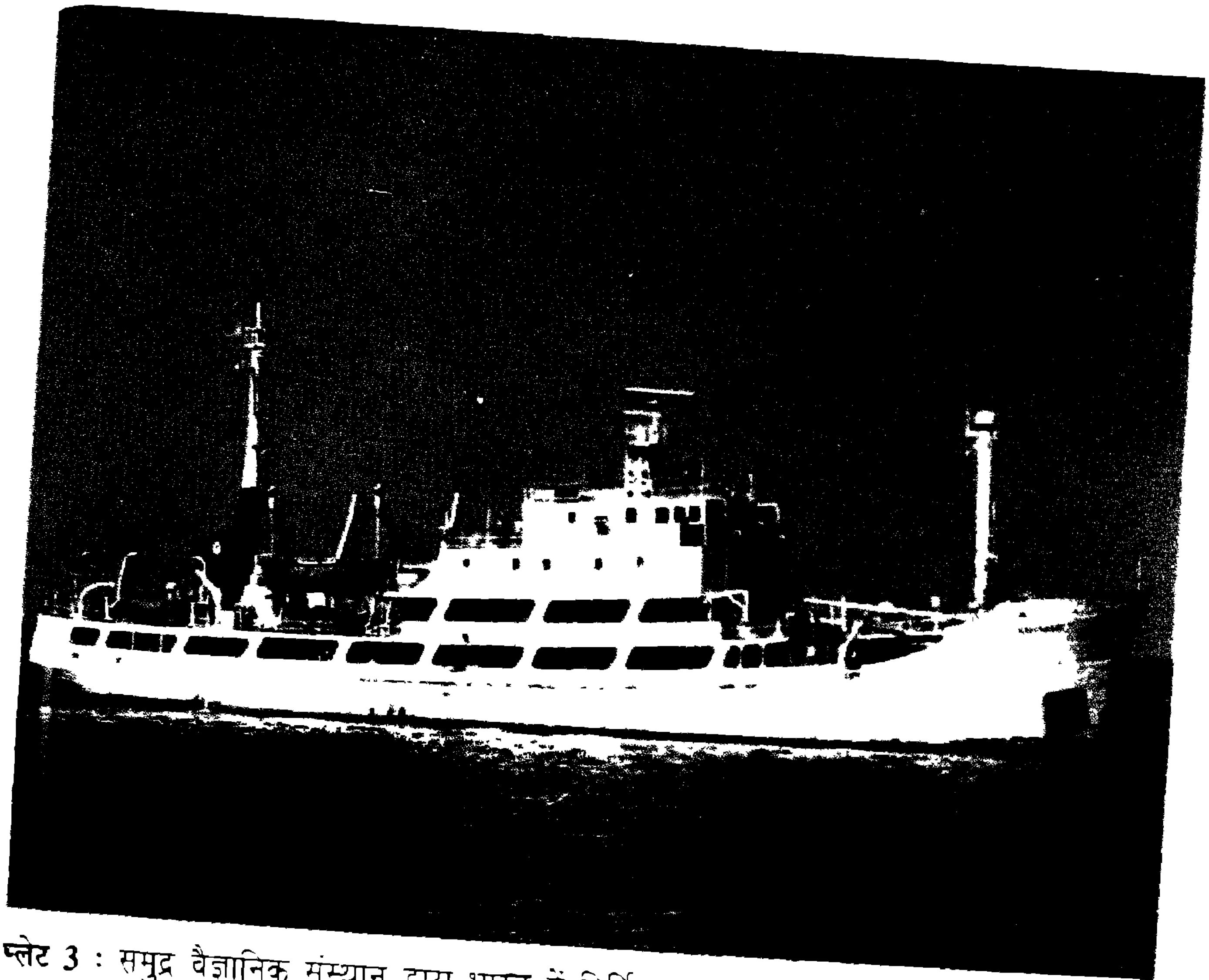
उत्तरी भूमध्य रेखा धारा और गल्फ स्ट्रीम जल के उस विशाल भंवर की दो मुख्य भुजाएं हैं जिसने उत्तरी अटलांटिक महासागर को घेर रेखा है। दक्षिणी भूमध्य रेखा धारा और ब्राजील धारा उस महान भंवर की दो भुजाएं हैं जो सारे दक्षिणी अटलांटिक महासागर पर फैला हुआ है। यहां देखने की बात यह है कि महासागरों में जल की सतह पर जो धाराएं चलती हैं वे विशाल भवरों के रूप में हैं जो उत्तरी गोलार्द्ध में दाएं से बाएं और दक्षिणी गोलार्द्ध में बाएं से दाएं चलती हैं। सभी महासागरों में सतह पर जल की धाराएं अनिवार्य रूप से भंवरों के रूप में होती हैं। इस प्रवृत्ति का मूल कारण पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूमना और उससे उत्पन्न होने वाली शक्तियां हैं (चित्र 9)।



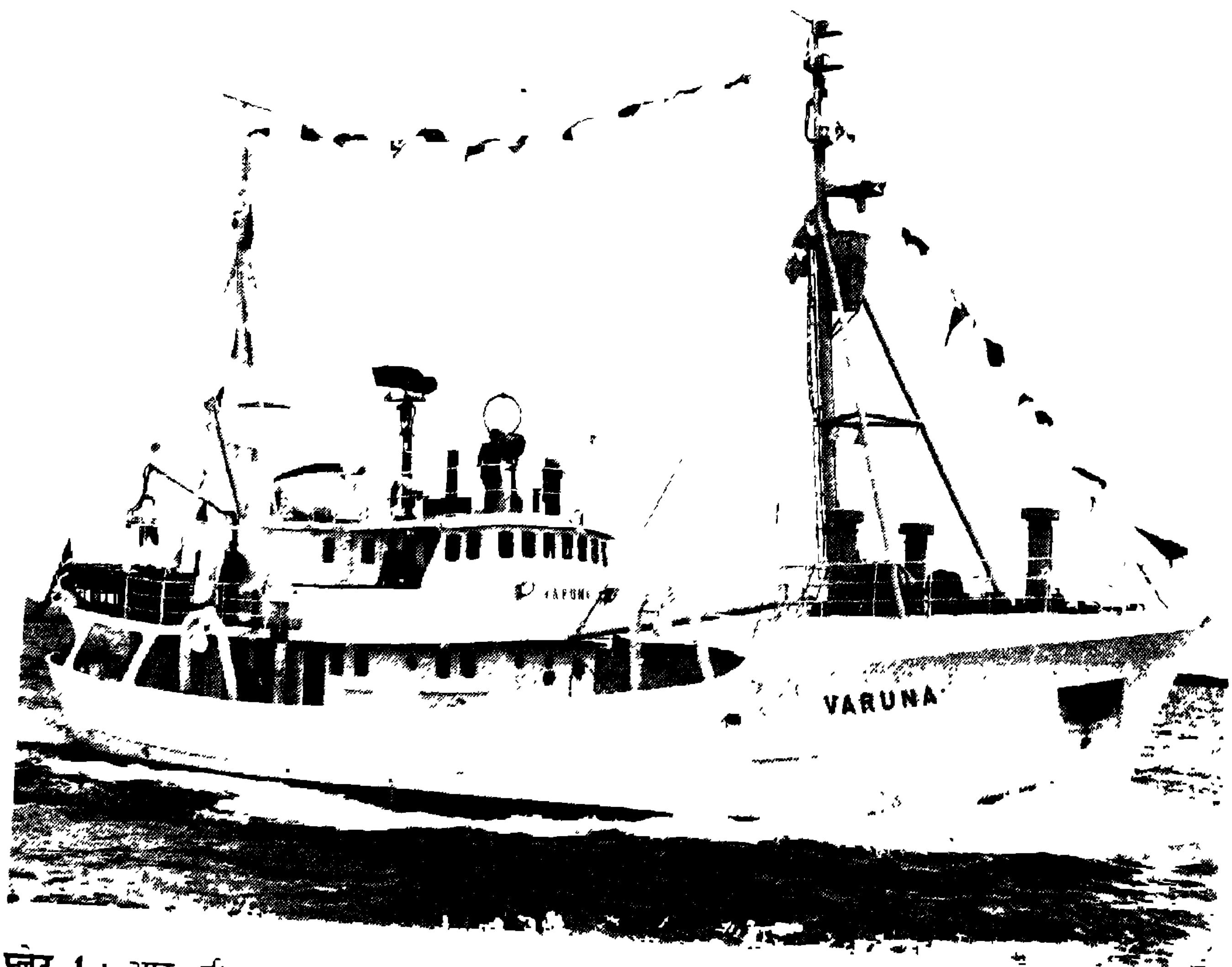
प्लेट 1 : राष्ट्रीय समुद्र वैज्ञानिक संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट आफ ओशनोग्राफी)



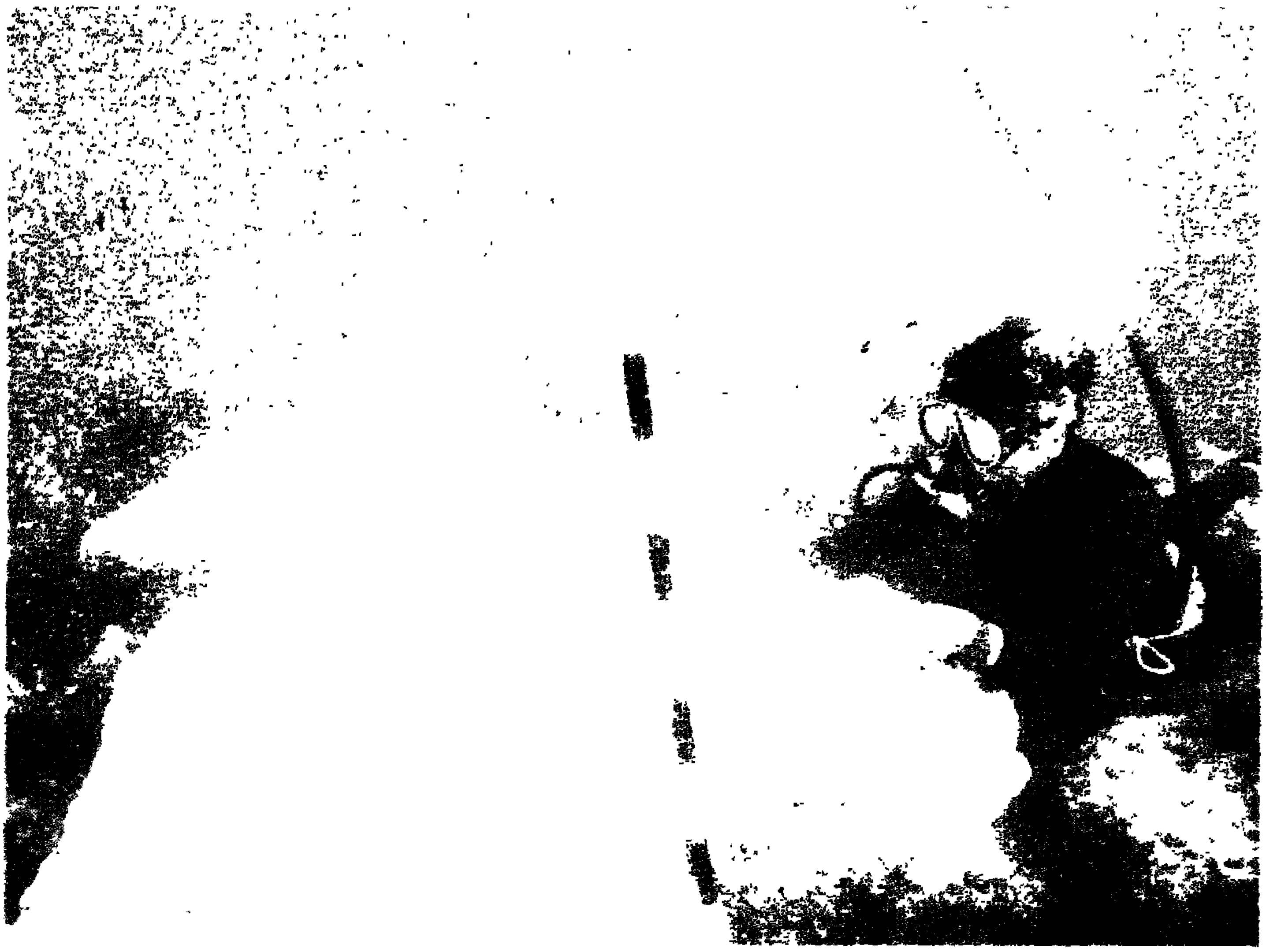
प्लेट 2 : समुद्र के फलक पर समुद्री विस्तार का नमूना।



प्लेट 3 : समुद्र वैज्ञानिक संस्थान द्वारा भारत में निर्मित अनुसंधान पात्र, *आर. वी. गवेषणी।*

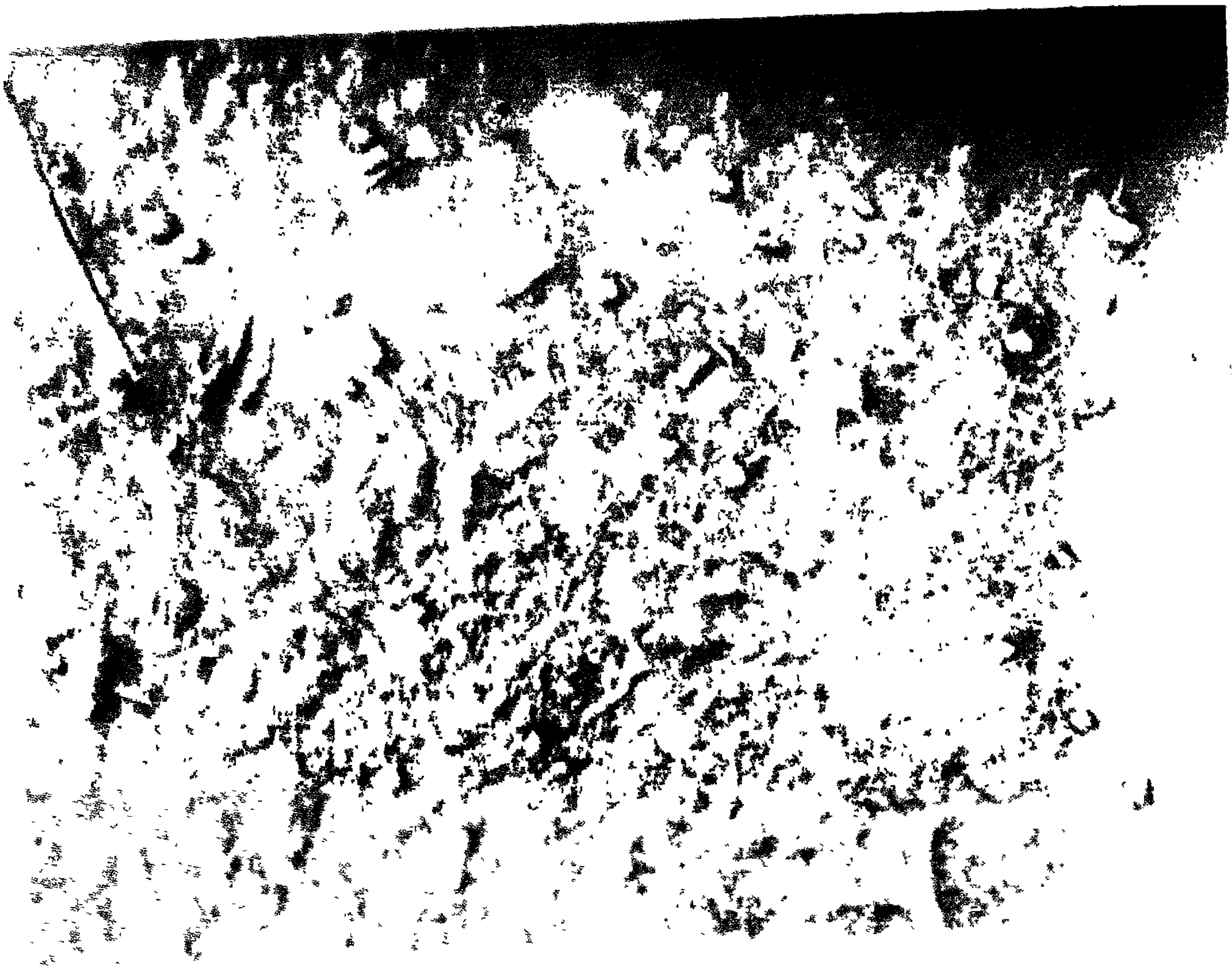


प्लेट 4 : *आर. वी. वरुण*



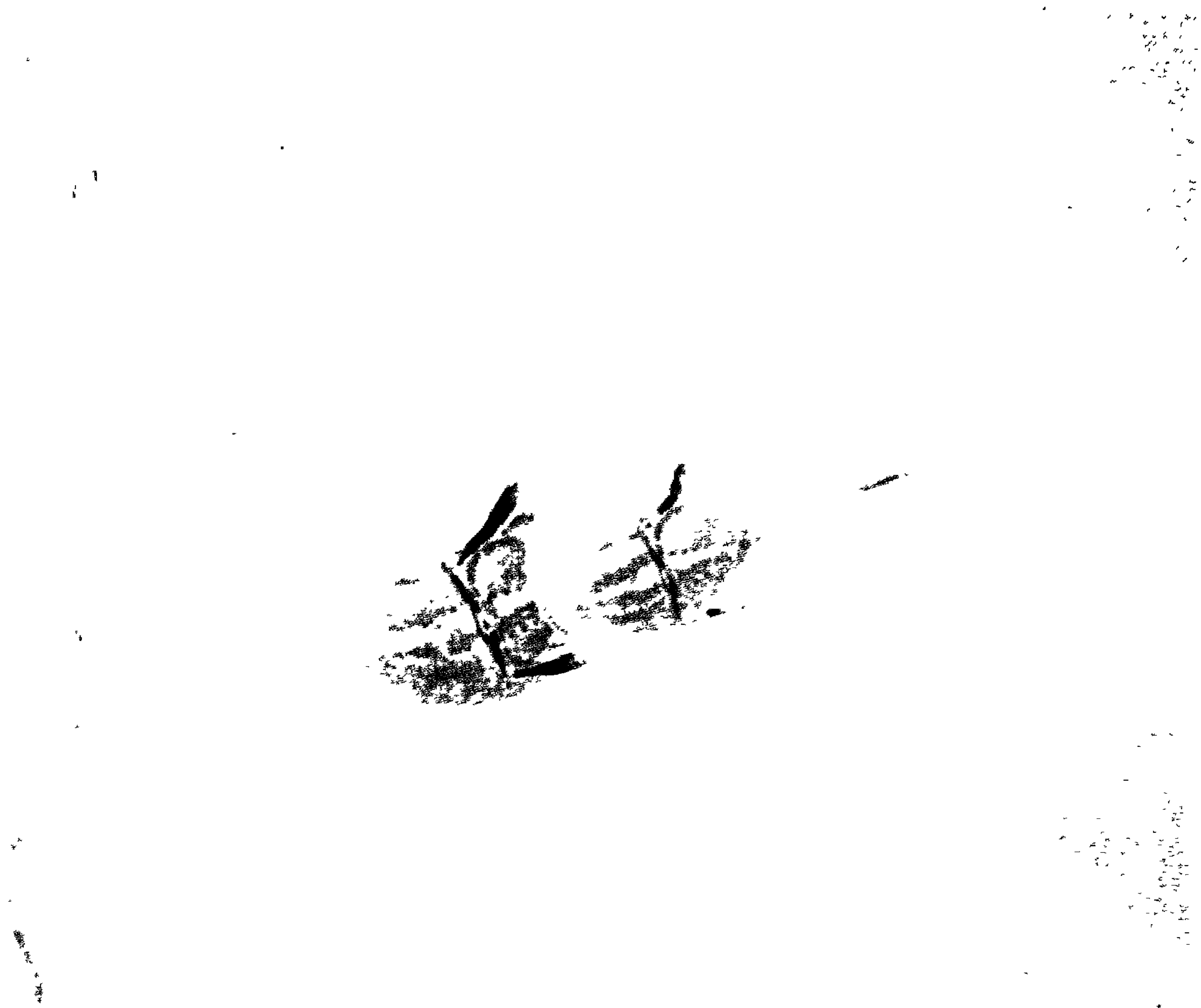


प्लेट 5 & 6 : गोताखोर द्वारका शहर की छानबीन करते हुए।

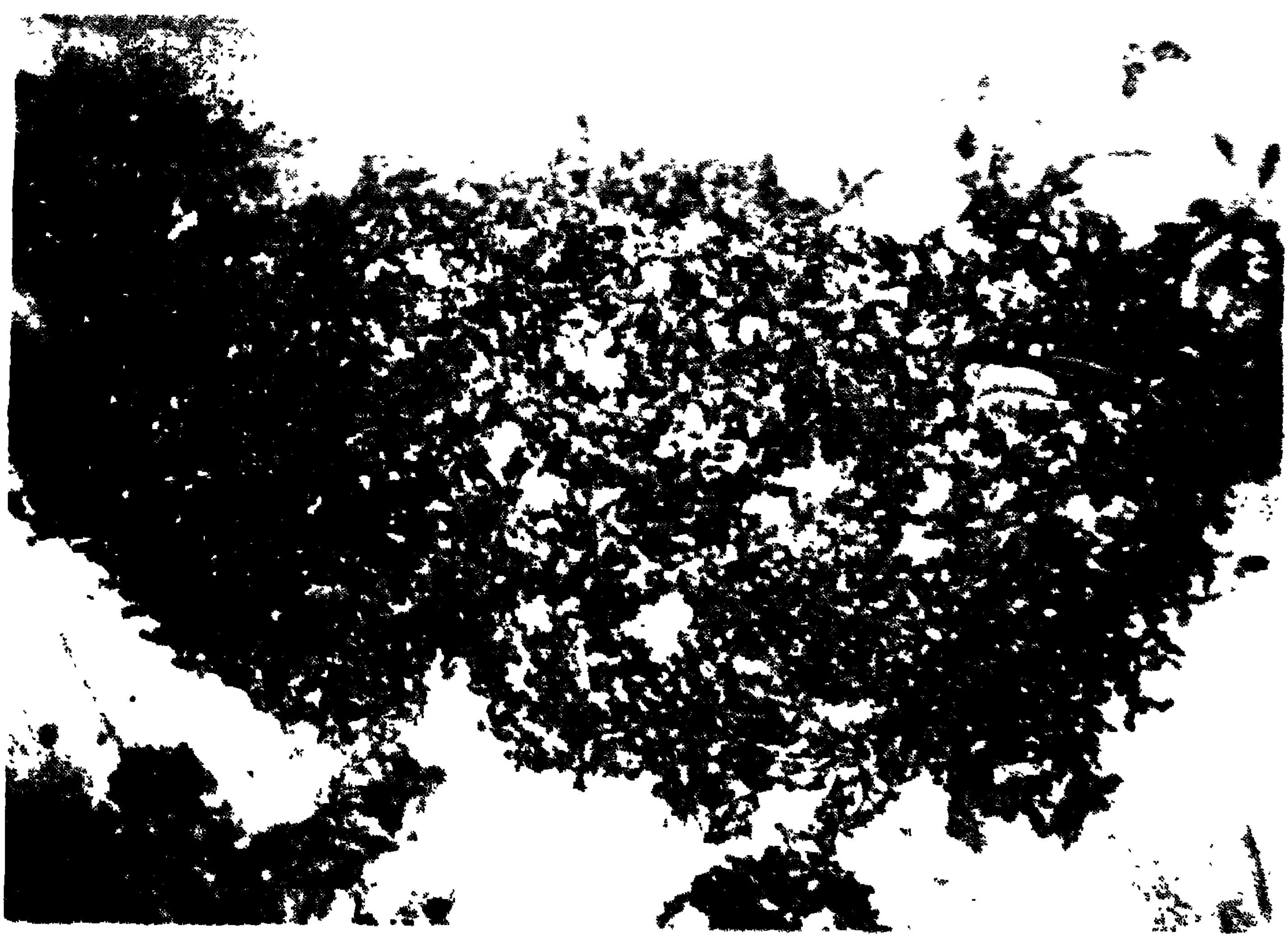




प्लेट 7 & 8 : रंगीन समुद्री शैवाल



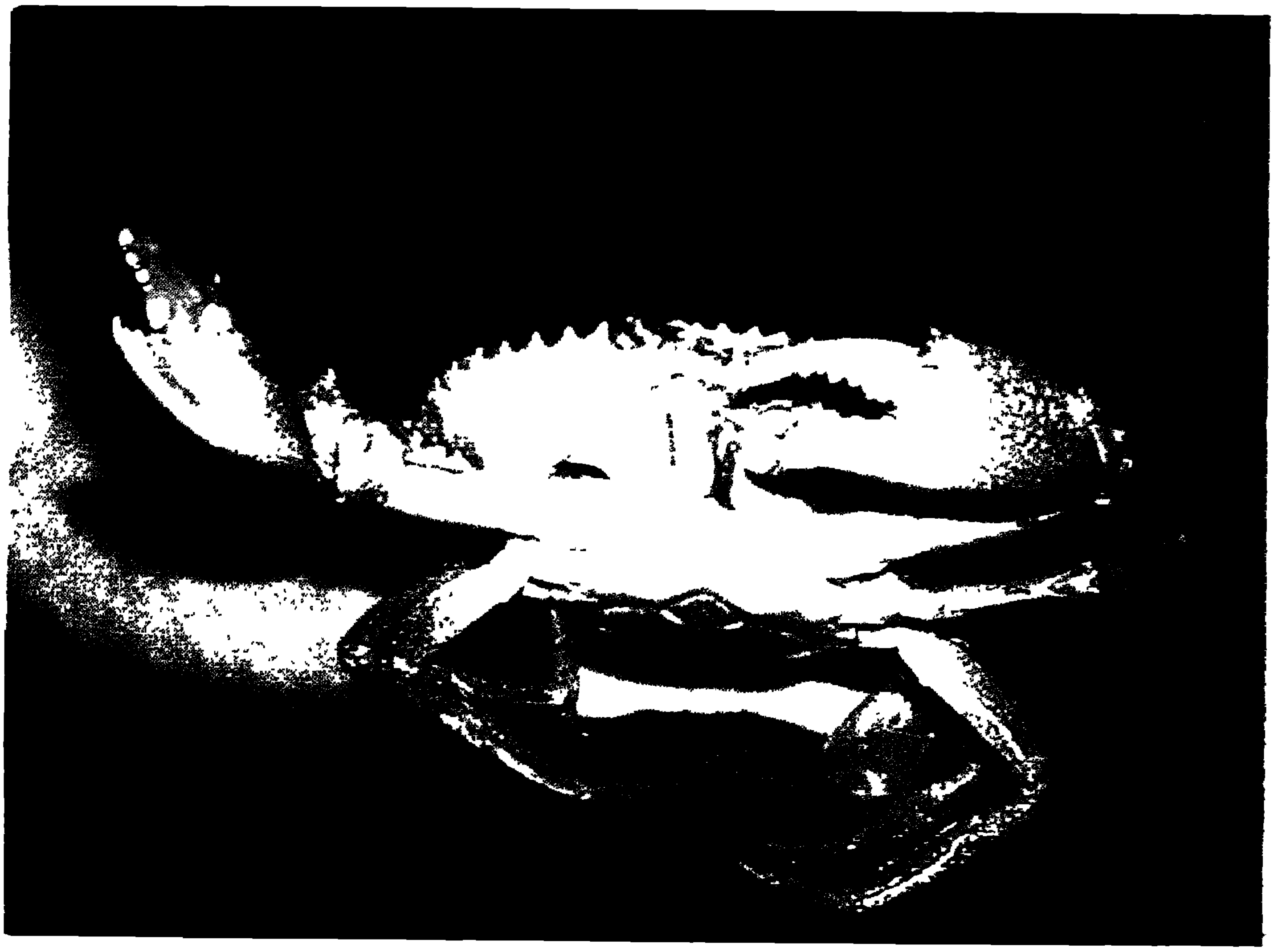
प्लेट 9 : उड़ीसा के समुद्र तट पर घोड़े की नाल के आकार का केकड़ा पाया जाता है।



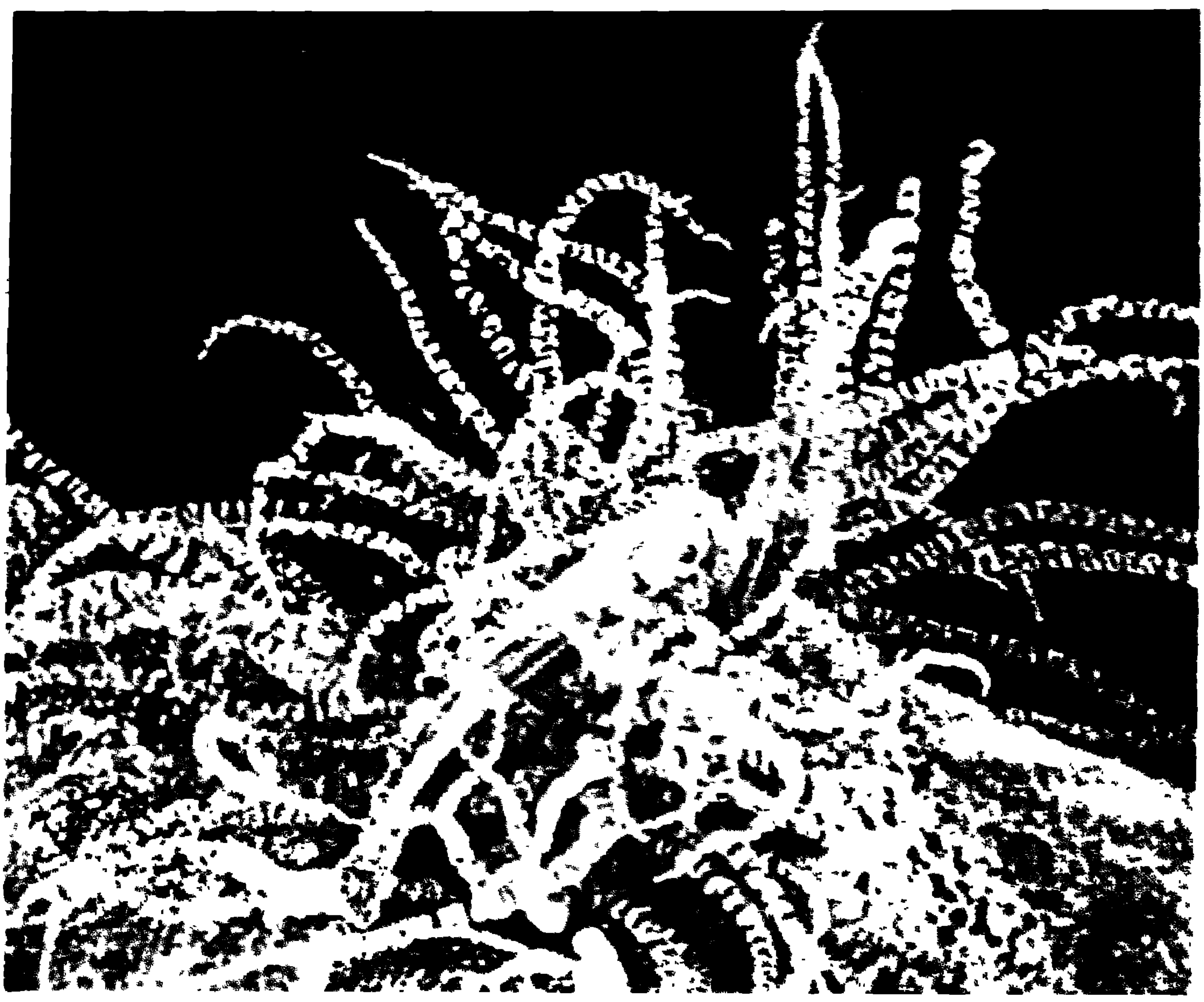
प्लेट 10 : अन्य प्रभावशाली शैवाल



प्लेट 11 : लाल, हरे और भूरे रंग के कवक गुच्छों में देखे जा सकते हैं।



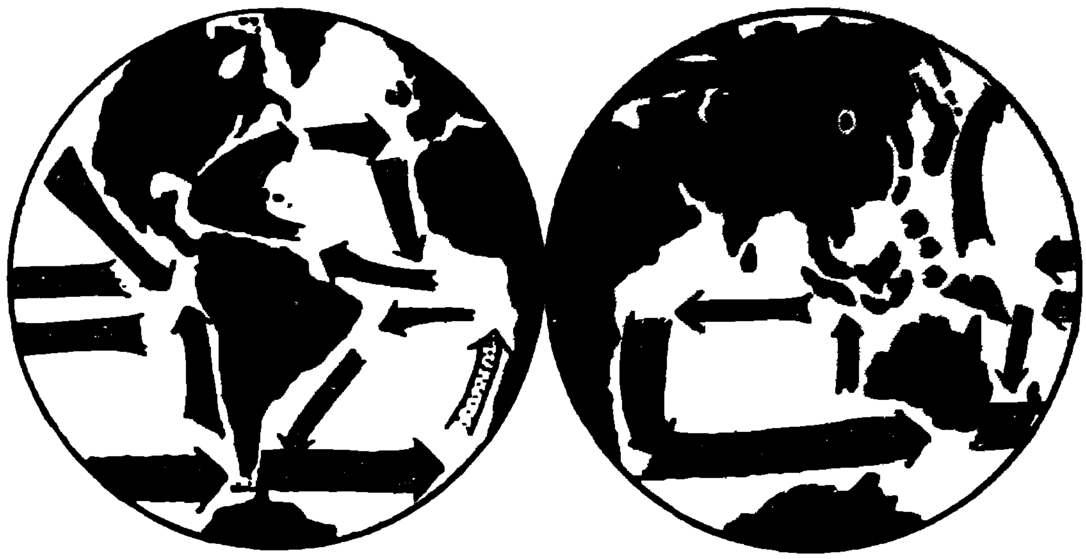
प्लेट 12 : कीचड भरे समुद्री किनारे पर केकड़े बहुतायत में पाए जाते हैं।



प्लेट 13 : आसपास फैले सफेद रंग के विषैले दंशों में एनिमोन ने मछली को जकड़ लिया है।



प्लेट 14 : स्टारफिश घातक द्रव्य से घोंघे को गतिहीन कर खा रहा है।



चित्र 9 : विभिन्न महासागरों की सतह पर चलने वाली धाराएं। सभी महासागरों में सतह पर चलने वाली धाराएं भंवर जैसी होती हैं—उत्तरी गोलार्द्ध में वे दाएं से बाएं और दक्षिणी गोलार्द्ध में बाएं से दाएं चलती हैं।

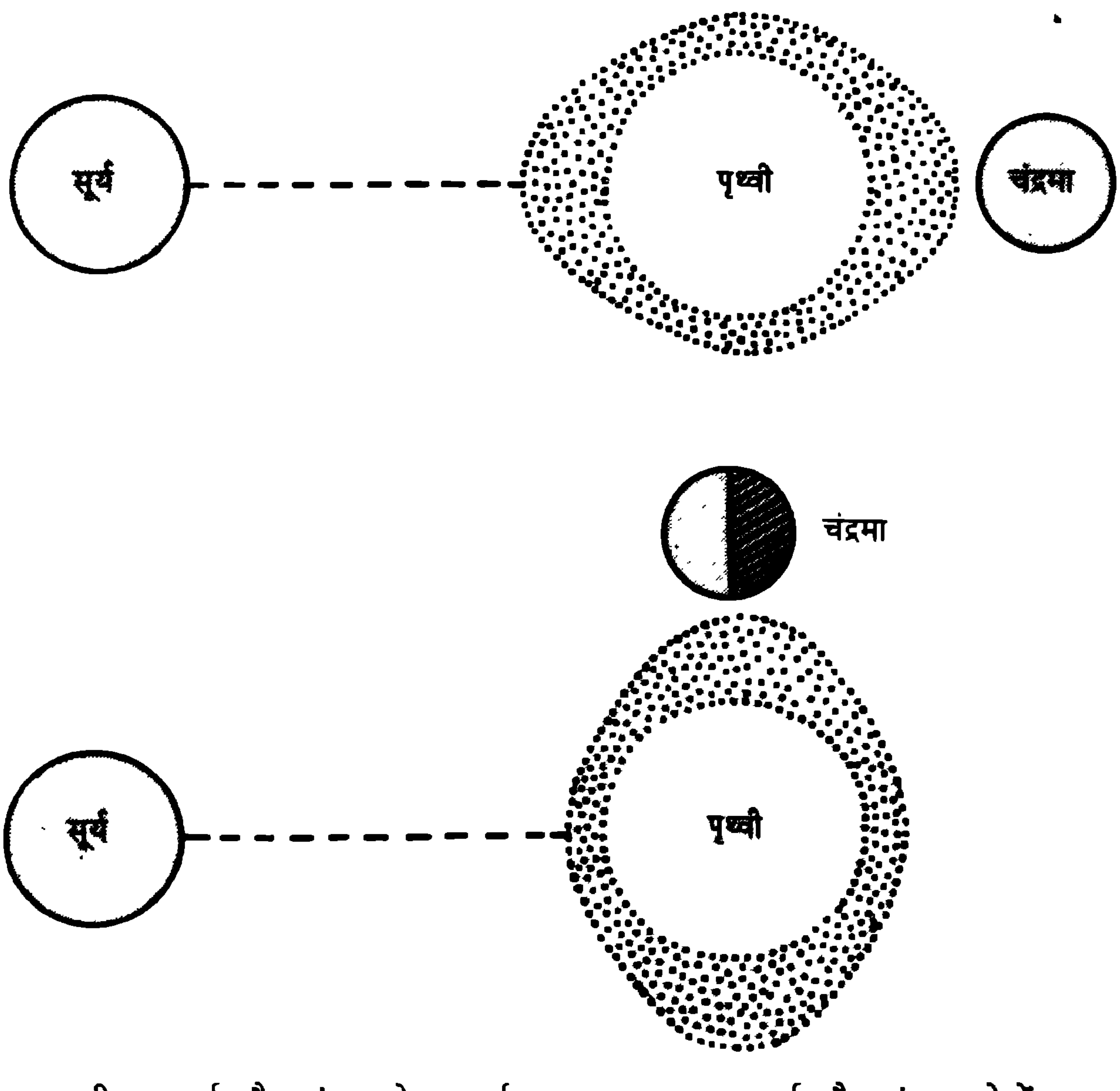
सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण से उत्पन्न गति

प्रकृति में सारे पिंड एक दूसरे को आकर्षित करते हैं और गुरुत्वाकर्षण की यह मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि उन पिंडों का आकार कितना है और वे एक दूसरे से कितनी दूर हैं। यह बात न केवल पृथ्वी पर और उसमें निहित तत्वों पर लागू होती है, बल्कि ग्रहों पर भी। पृथ्वी सूर्य द्वारा आकृष्ट होती है और उसे आकृष्ट करती है। उसी प्रकार चंद्रमा और आकाश के अन्य पिंडों और ग्रहों के साथ भी पृथ्वी का यही संबंध है। लेकिन चंद्रमा का आकर्षण सबसे अधिक है, क्योंकि यह ग्रह पृथ्वी के बहुत समीप है। सूर्य का आकर्षण भी बहुत अधिक है, क्योंकि उसका आकार बहुत बड़ा है। उसके गुरुत्वाकर्षण का पृथ्वी पर बहुत प्रभाव पड़ता है। समुद्र में उठने वाले ज्वार पृथ्वी पर चंद्रमा और सूर्य के गुरुत्वात्कर्षण के प्रभाव के प्रमाण हैं। ये ज्वार दिन में दो बार उठते हैं (चित्र 10)।

गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी अपने अंतर्तम से अपनी सतह तक स्पंदित होती है। वह अत्यधिक आकर्षण के स्तर पर फैलती और तिरछे स्तर पर उतना ही सिकुड़ती है। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण की दिशा में यह स्तर चौड़ा और तिरछी दिशा में संकरा हो जाता है। लेकिन यह फैलाव और संकुचन (जिसकी तुलना सांस लेते व्यक्ति से की जा सकती है) भूमि पर दिखाई नहीं देता, क्योंकि भूमि एक ठोस पिंड है और फिर इस स्पंदन को देखने वाले मानव भी उसी स्पंदन का अंग हैं। समुद्र के जल की उठान और उसकी गिरावट स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाती है क्योंकि जल तरल है और उसकी बनती बिगड़ती शक्ल आसानी से पहचानी जाती है। दूसरी बात यह है कि जल चट्टानों

और खनिज पदार्थों की तुलना में बहुत हल्का है। जब भी समुद्र की सतह पर जल ऊपर उठता है तो वह तट की ओर चलता है और हमें ज्वार दिखाई देता है। कुछ घंटों बाद जब गुरुत्वाकर्षण का स्पंदन कम हो जाता है, तो बढ़े हुए जल स्तर में कमी आ जाती है और ज्वार, भाटे में बदल जाता है। संसार भर के तटों पर आप दिन में दो बार ज्वार और भाटा देख सकते हैं।

देखा जाये तो ज्वारभाटा नियमित रूप से होना चाहिए क्योंकि पृथ्वी, सूर्य और चंद्रमा आदि की गति बड़ी नियमित है (चित्र 10)। लेकिन वास्तव में गुरुत्वाकर्षण और कई अनियमितताओं के कारण ज्वार व्यवस्थित नहीं होते। वे न तो नियत समय पर आते हैं और न उनका आकार एक जैसा होता है। यह अंतर चाहे कितने ही क्यों न हों, समुद्र का जल एक क्षण के लिए भी शांत नहीं रहता क्योंकि ज्वार की सर्वव्यापी गति चलती रहती है। उनके साथ अन्य शक्तियों का मिलाप हो जाने से समुद्र का जल और अधिक अशांत हो जाता है।



चित्र 10 : पृथ्वी पर सूर्य और चंद्रमा के आकर्षण का प्रभाव। जब सूर्य और चंद्रमा, दोनों अपना प्रभाव डालते हैं तो उसे **स्प्रिंग टाइड** कहा जाता है। यह ज्वार सबसे अधिक ऊंचा होता है। जब ये दोनों एक दूसरे से 90° के कोण पर होते हैं तो उनके गुरुत्वाकर्षण से उत्पन्न ज्वार परस्पर विरोधी होते हैं और इस कारण ज्वार के स्थान पर भाटा आ जाता है।

लेकिन हमें जल की एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति व ज्वार के रूप में गति में भेद करना पड़ेगा। एक स्थिति तो यह है कि जल एक स्थान से हट कर दूसरे स्थान पर चला जाता है, लेकिन जब ज्वार आता है तो जल रहता वहीं है, लेकिन ऊपर को उठता और फिर नीचे को गिरता है। लहरों के संदर्भ में देखा जाए तो ज्वार को सबसे बड़ी लहर कहा जा सकता है। जब लहरें चट्टानों, द्वीपों या तटों से टकराती हैं, तभी उन लहरों में सम्मिलित जल के कण एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं।

सूर्य की गर्मी से होने वाली गति

पृथ्वी को सारी ऊर्जा सूर्य से उसकी ऊष्मा के रूप में प्राप्त होती है। जैसा कि हम जानते हैं, कि ऊष्मा के रूप में इस ऊर्जा की अधिकतम मात्रा भूमध्य रेखा के क्षेत्र में प्राप्त होती है और सबसे कम दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव के क्षेत्र में। इसका कारण यह है कि सूर्य के संदर्भ में पृथ्वी की एक विशेष स्थिति है। परिणाम यह होता है कि भूमध्य रेखा के क्षेत्र में समुद्र का जल गर्म होकर हल्का हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि भूमध्य रेखा पर पानी का स्तर कई सेंटीमीटर ऊंचा हो जाता है और उसका झुकाव दूसरों की ओर जाता है। भूमध्य रेखा का हल्का गर्म जल दक्षिणी और उत्तरी दिशाओं में चल पड़ता है और उन क्षेत्रों का जल जो ठंडा होता है, समुद्र तल की ओर चल पड़ता है। यह ठंडा और अधिक घना जल, जल के नीचे चलने वाली धाराओं के रूप में भूमध्य रेखा की ओर चल पड़ता है। हमने ऊपर दो उदाहरण दिए हैं, जिनसे यह पता चलता है कि समुद्र की सतह पर सूर्य की गर्मी से जल के रासायनिक गुणों में परिवर्तन हो जाता है और उसका यह परिणाम होता है कि आसपास के जल की मात्राओं के बीच ऊर्जा के जो अवकल समीकरण हैं (क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर, दोनों) वे उत्पन्न हो जाते हैं। जब समुद्र के जल की किसी मात्रा विशेष में ऊष्मा के कारण नमक की मात्रा कम हो जाती है, तो उस जल का तापमान और दबाव भी बदल जाता है। उसके बाद जल की उस मात्रा की आसपास के जल के साथ अंतक्रिया अवश्यंभावी है। परिणाम यह होता है कि जल के दो टुकड़े एक दूसरे को धकेलते हैं या परस्पर मिल जाते हैं। जब ये प्रक्रियाएं नियमित अंतराल पर होती हैं और उनकी दिशा स्पष्ट होती है तो ऐसी गति को संचलन कहा जाता है। संचलन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ऊर्जा का स्थानांतरण और रूप भेद समुद्र में होता है। सूर्य की ऊष्मा से प्राप्त ऊर्जा की मात्रा समुद्र के विभिन्न भागों पर भिन्न भिन्न होती है और इसी कारण

जल के संचलन की व्यवस्था भी भिन्न भिन्न है। कई ऐसे स्थान हैं जहां पर समुद्र में चलते हुए जल की धारा दिखाई पड़ जाती है। इस धारा की दिशा और इसका वेग वैसा ही होता है जैसा कि सामान्य ऋतुओं में नदियों का। कुछ ऐसे स्थान हैं जहां पर जल का यह संचलन नगण्य होता है। पहले प्रकार के संचलन को समुद्री धारा की संज्ञा दी जाती है और दूसरे को केवल बहाव कह दिया जाता है। पृथ्वी पर बढ़ने वाली नदियों के विपरीत समुद्र में चलने वाली धाराएं भूमि की सीमाओं में नहीं बंधी होतीं। वे धाराएं हों या बहाव, उनके भौतिक और रासायनिक तत्व आसपास के जल से भिन्न होते हैं। लेकिन मौसम के प्रभाव के कारण यह हो सकता है कि किसी समुद्री धारा का जल इतना अधिक हो कि आसपास के क्षेत्र में फैल जाए और उस जल में जा मिले।

सूर्य की ऊष्मा का अधिकतर भाग समुद्र की सतह पर जल में समो लिया जाता है। यह ऊर्जा जल की ऊपर की तहों से नीचे जाती रहती है, या तो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से और इस कारण जल की निचली तहों में ऊर्जा की मात्राएं सुरक्षित रहती हैं। भौतिक-रासायनिक तत्वों के आधार पर (वे हैं लवणता, तापमान और दबाव आदि) समुद्र के जल को ऊर्ध्वाधर दिशा में निम्नलिखित पांच भागों में बांटा गया है—(1) ऊपरी सतह की तह, (2) ऊपरी तह, (3) बीच की तह, (4) गहरी तह, और (5) सबसे नीचे की तह। जल की सतह के नीचे जल की गति जारी रहती है। एक तह का जल अपने ही क्षेत्र में चलता है या दूसरे क्षेत्र में भी पहुंच जाता है। लेकिन इस प्रकार के संचलन को बहाव कहा जाता है, क्योंकि इसमें जल की गति अत्यंत मध्यम होती है। इस प्रकार जल के संचलन का बहुत महत्त्व है क्योंकि इसी के माध्यम से समुद्र के विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्जा और पानी का मिलाप होता रहता है। यद्यपि हम सतह के नीचे चलते हुए जल को नहीं देख सकते, जल के संचलन का मानव जाति के कल्याण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जल के इसी संचलन के कारण समुद्र के जल में ऊष्मा बनी रहती है। और उसका धीरे धीरे प्रयोग होता रहता है। पृथ्वी पर जलवायु के लिए समुद्री जल का बहुत बड़ा महत्त्व है।

जल की सतह पर चलने वाली धाराएं और उसके नीचे प्रवाहित होने वाली धाराएं एक दूसरे के लगभग समानांतर होती हैं। लेकिन जल का संचलन अन्य प्रकार से भी होता है। उदाहरण के लिए, ऊपर की सतह का अधिक घना जल निचले स्तरों तक पहुंच जाता है और नीचे का जल भौतिकी-रासायनिक तत्वों के दबाव के कारण ऊपर को उठ जाता है। इस प्रकार जल के ऊपर या नीचे उठने

के लिए जो धाराएं जिम्मेदार हैं, उन्हें संवहन धाराएं कहा जाता है। यद्यपि ये धाराएं सभी समुद्रों में और उनके बीच जल के संतुलन की व्यवस्था का अंग नहीं हैं लेकिन उनका महत्त्व इस कारण है कि उनके कारण जल बदलता रहता है या आलोड़ित होता रहता है। जल की बहुत सी ऊर्ध्वाधर तहें स्थिर रह सकती थीं लेकिन कई प्रकार की संवहन धाराएं उनमें बाधक होती हैं और जल की अलग अलग तहें बनी नहीं रहतीं। इनसे एक लाभ यह भी होता है कि समुद्र के ऊपर की सतह की ऊर्जा नीचे तक और नीचे के क्षेत्र की ऊर्जा ऊपर तक आ सकती है।

गर्मी के अप्रयत्क्ष प्रभाव

अब तक हमने इस बात की चर्चा की है कि समुद्र के ऊपर की सतह के जल के गर्म होने का कौन सा प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जिसके कारण जल का संचलन हो जाता है। इस प्रक्रिया में एक अप्रत्यक्ष प्रभाव भी है जो हवाओं के चलने से उत्पन्न होता है। सूर्य की गर्मी से सारी पृथ्वी का वायुमंडल गर्म हो जाता है। यह गर्मी, भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक होती है। तापमान के क्रम के कारण वायु में गति प्रारंभ हो जाती है और वायु की यह गति सारी पृथ्वी पर स्थायी रूप से होती रहती है। इस प्रकार चलने वाली हवाओं को व्यापारिक हवा की संज्ञा दी जाती हैं। पृथ्वी पर जो वस्तुएं पड़ी हैं उनको अपने स्थान से विस्थापित करने की शक्ति आंधी, तूफान और झक्कड़ में ही है। जिस समय आंधी चलती है हम रेत के असंख्य कण हवा में उड़ते देखते हैं। कई बार इन हवाओं के कारण हल्की चीजें एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती हैं। लेकिन इसके विपरीत समुद्र में हवा का तनिक भी वेग हो तो जल की ऊपरी सतह विचलित हो जाती है। इस प्रकार के विचलन से प्रतिक्रियाओं की एक शृंखला जन्म लेती है और समुद्र में कई धाराएं बनती हैं या उनका वेग बढ़ जाता है। जब ऊपरी सतह का जल निचली सतह पर दबाव डालता है तो वह जल भी अपने स्थान से हिलने लगता है। इस प्रकार जल के दबाव और संचलन की प्रक्रिया प्रत्येक स्तर पर होने लगती है। यदि हवा निरंतर वेग से चलती रहे तो हो सकता है कि समुद्र का जल ऊपर से नीचे तक हिलने लगे। जब ऊपर की सतह का जल हिलता है, तो उसका दबाव नीचे के जल पर पड़ता है और नीचे का जल तनिक दाईं ओर, या दक्षिणी गोलार्द्ध में बाईं ओर को चल पड़ता है। जल की प्रत्येक सतह अपने से नीचे वाली सतह पर दबाव डालती है और प्रत्येक स्तर पर जल दाईं या बाईं ओर भी चलता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वायु के वेग और जल के घनत्व को देखते

हुए कोई न कोई गहराई ऐसी अवश्य होती है, जहां जल का वेग और जल का संचलन वायु की उस दिशा के विपरीत होता है, जिसमें वह चल रही होती है और नीचे के जल पर दबाव डालती है। लेकिन संचलन का वेग गुणोत्तर श्रेणी में घटता है। परिणाम यह होता है जिस गहराई पर जल की धारा वायु की धारा के विपरीत होती है वहां वेग बहुत कम, अर्थात् जल की सतह की तुलना में लगभग चार प्रतिशत, होता है। उस स्तर के नीचे वेग लगभग शून्य होता है। कहते हैं कि वायु के प्रभाव से जल का संचलन वायु की दिशा के संदर्भ में 90° के कोन पर होता है (कोकर, पृष्ठ 139)।

ऊर्ध्व गति

समुद्री जल की ऊर्ध्वगति का विशेष उल्लेख आवश्यक है। जब समुद्र तल से जल ऊपर को उठ कर सतह पर आ जाता है तो उसे जल की ऊर्ध्व गति कहा जाता है। उसकी विशेषता यह है कि समुद्र तल पर पड़ी बहुत सी वस्तुएं जल के साथ ऊपर आ जाती हैं। समुद्र के जल में जो हलचल होती है वह सबसे अधिक ऊर्ध्व गति से दिखाई देती है। इस कारण इसे समुद्री परिवेश की जैविकी उत्पादकता की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जो पौष्टिक पदार्थ समुद्र तल पर जाकर बैठ जाते हैं और जल से बिल्कुल अलग हो जाते हैं वे ऊर्ध्व गति के कारण फिर ऊपर की सतह पर आ जाते हैं। जिस समुद्र में जल नियमित रूप से तल से ऊपर की सतह की ओर आ रहा हो वहां पौधों और जीवों की उत्पत्ति की अधिक संभावना हो जाती है। इस प्रकार की ऊर्ध्व गति तटों के आसपास दिखाई देती है। जब जल लगातार तट की ओर या उससे परे जा रहा होता है तो रिक्त स्थान पर जल के आने के कारण समानांतर धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं। समुद्री जल की ऊर्ध्व गति भारत के पश्चिमी तट, पश्चिमी अफ्रीका, कैलीफोर्निया और पेरु आदि के तटों पर अधिक देखने को मिलती है।

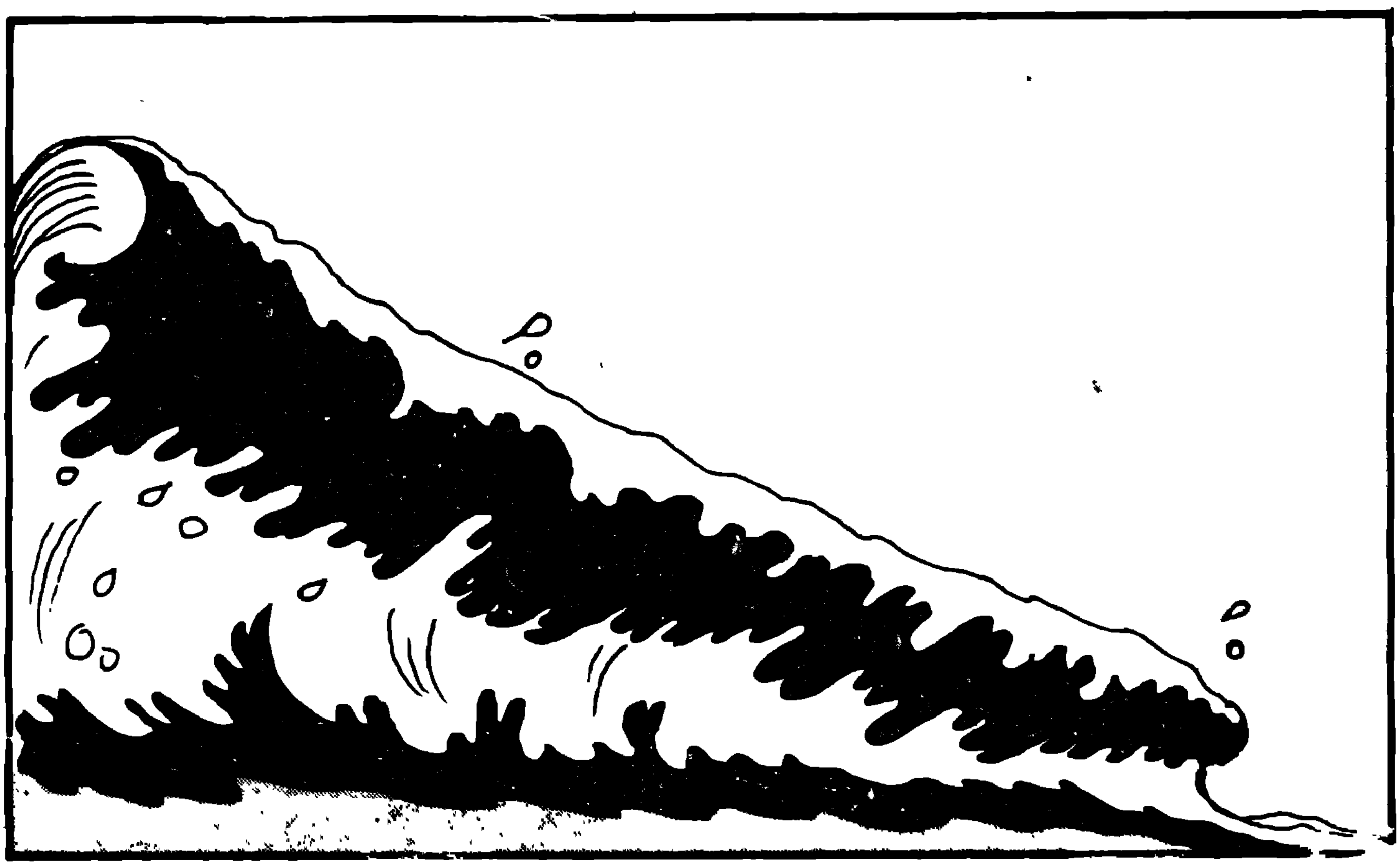
अपसार और अभिसार

यहां पर अपसार और अभिसार जैसी घटनाओं का उल्लेख आवश्यक है। ये संवाही धाराएं होती हैं, जिनका विशेष स्वरूप है। अपसार में ऊपर को आता हुआ जल परे को हटता है और अभिसार में यह होता है कि ऊपरी सतह का जल निचले स्तर पर चला जाता.है और नीचे का जल ऊपर आकर उसका स्थान ले लेता है।

लहरें और फेनिल तरंगें

अब तक हमने लहरों के बारे में कुछ नहीं कहा जो कि समुद्र की विशेषता हैं। लहरें समुद्र की गतिशीलता की दृश्य अभिव्यक्ति हैं। लहरों के ही कारण जहाज या नाव में बैठे व्यक्ति को ऐसा लगता है कि सब कुछ हिल रहा है। जब लहरें उठती हैं तो वे बड़े बड़े जहाजों को अपने साथ ऊंचा उठा देती हैं और उसके बाद वे लहर के पीछे के गर्त में जा गिरते हैं। लहरें बराबर तट से टकराती रहती हैं, कई बार धीमे से और कभी कभार बड़े वेग से। लहरों से विश्वभर में समुद्र तटों को हानि पहुंचती है, गोदियां और पट्ट नष्ट भी हो जाते हैं। अगर कोई तट कट जाता है तो उसकी जिम्मेदारी भी लहरों पर ही है। लेकिन लहरें आमोद-प्रमोद का साधन भी बन जाती हैं, बहुत से लोग तख्ते पर बैठ कर लहरों का आनंद लेते हुए समुद्र में विचरण करते हैं।

लहरों के बारे में कई प्रकार के प्रमेय हैं, लेकिन यहां पर हम उनका ब्यौरा नहीं दे सकते। हम कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को लेकर लहरों का विवेचन करेंगे। लहरें हवा चलने से पैदा होती हैं। लहरों के माध्यम से जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं जाता जैसे कि धाराओं के माध्यम से जाता है। लहर तो जल की ऊपर नीचे होने वाली गति मात्र है। आपने देखा होगा कि जब धीमी हवा चलती है तो धान के पौधे हिलने लगते हैं और हवा के वेग से ही नीचे को झुकते और फिर अपना सिर उठाते हैं। जब हवा चलनी बंद हो जाती है तो धान के पौधे



चित्र 11 : ज्वारीय लहर पानी की दीवार की तरह उमड़ पड़ती है।

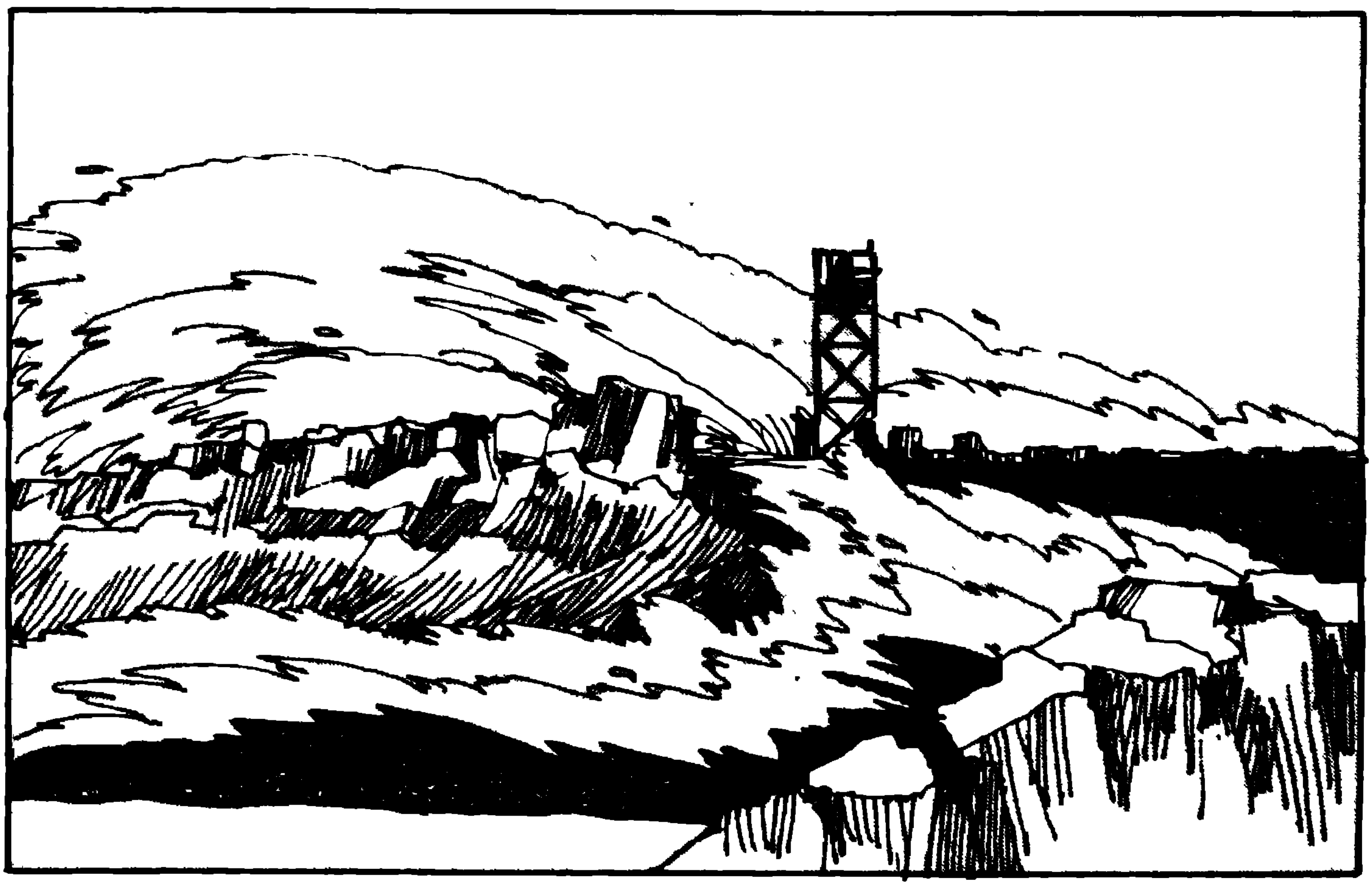
फिर अपनी पहली स्थिति में आ जाते हैं, इसी प्रकार हवा के वेग से जल नीचे ऊपर होता है और हमें लहरें दिखाई देती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जल के कण ऊपर उठते हैं, आगे को चलते हैं फिर गिर पड़ते हैं और फिर पीछे चले जाते हैं। जल के कण कहीं बंधे हुए नहीं होते जैसे कि धान के पौधे होते हैं। इसलिए उनकी गति लहरों के रूप में होती है (चित्र 11)।

इस प्रकार की लहरें खुले समुद्र में देखी जा सकती हैं जहां जल के कणों के इधर से उधर जाने में कोई बाधा नहीं होती। लेकिन तटों या द्वीपों, बल्कि जहाजों के आसपास भी, जल के कणों के लहरदार रास्ते में रूकावट आती है और जब लहरें टकराती हैं तो फेनिल तरंगों का रूप धारण कर लेती हैं। यह बात बड़ी आसानी से समझी जा सकती है कि लहरें उठने के बाद किस प्रकार गिर पड़ती हैं। लहर के चार भाग होते हैं—उसकी कलगी या ऊपर का भाग, उसके बीच में खाली स्थान, उसकी ऊंचाई और उसकी लंबाई। लहर का सबसे ऊंचा भाग उसकी कलगी कहलाता है और उसका सबसे निचला हिस्सा वह खाली स्थान है जहां से जल ऊपर उठ गया है। सबसे ऊंचे स्थान और निचले स्थान के बीच की दूरी लहर की ऊंचाई है और दो लहरों की कलगियों के बीच की दूरी लहर की लंबाई। जब तक लहर का ऊपरी और सबसे निचला भाग बिना किसी रूकावट के आगे जा सकता है तब तक वह सच्चे अर्थों में लहरदार संचलन है। लेकिन तट के समीप या जहां जल के नीचे चट्टानें हों, लहर का निचला भाग उनसे टकराता है और चलते हुए जल के कणों की घुमावदार प्रगति में बाधा डालता है। परिणाम यह होता है कि लहर का सबसे ऊंचा भाग नीचे गिर पड़ता है और जल के कणों की डोलन जैसी गति समाप्त हो जाती है। जब लहर गिरती है तो उसे ब्रेकर (अर्थात् तट से टकराती) लहर कहा जाता है। ऐसी लहरें बड़ी मात्रा में गतिज ऊर्जा को जन्म देती हैं। जब तक लहर उत्पन्न करने वाली वायु का वेग अधिक और स्थायी रहता है, तब तक गिरती हुई लहरों में बहुत शक्ति रहती है। जब हवा की गति सामान्य हो, तो लहरों की ऊंचाई 2 से 5 मीटर तक होती है, लेकिन जब वायु का वेग बहुत अधिक हो तो 10 से 12 मीटर तक ऊंची लहरें उठती हैं। दूसरे शब्दों में लहर की ऊंचाई चार मंजिल के मकान जितनी हो जाती है। कहीं कहीं लहर की ऊंचाई तीस मीटर तक देखी गई है जो गगनचुंबी इमारत जितनी होती है।

जल के नीचे की हलचल

हवा के वेग से उत्पन्न होने वाली लहरें तो समुद्र की सतह पर ही दिखाई देती

है और ज्यों-ज्यों आप समुद्र के अंदर जाएं, लहरों का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ेगा। इसका मतलब यह है कि चाहे समुद्र में कितना ही भीषण तूफान क्यों न आया हुआ हो, पनडुब्बियां जल के नीचे अबाध रूप से विचरण कर सकती हैं। लेकिन कभी कभी कुछ अन्य तत्वों के कारण जैसे कि समुद्र में किसी ज्वालामुखी के फटने, भूचाल आने या चट्टानों अथवा मिट्टी के गिरने से नीचे के जल में या तो हलचल हो जाती है या लहरें उठने लगती हैं। इस प्रकार की जो लहरें उठती हैं वे सभी दिशाओं में फैल जाती हैं। यदि भूचाल बहुत जोर का आया हो तो उससे उठने वाली लहर विपत्ति की सूचक हो सकती है। ऐसी लहर को ज्वार-लहर कहते हैं। जब यह लहर कहीं टकरा कर टूटती है, तो उसमें निहित ऊर्जा विनाशकारी होती है। इस प्रकार की लहर समुद्र में उठती है तो उसके आगे कोई टिक नहीं सकता। सन् 1964 में मन्नार खाड़ी में मंडपम के तट पर ऐसी लहर आकर टकराई थी जो पम्बन में भारत के साथ रामेश्वरम् द्वीप को जोड़ने वाले पुल को बहा ले गई थी। जिस समय यह लहर टकराई, यात्रियों से भरी हुई एक रेलगाड़ी पुल पर से गुजर रही थी। यात्री समेत रेलगाड़ी और पुल उस लहर में बह गये थे। उस ज्वार-लहर ने भीषण हानि की थी। इस प्रकार की लहरें बहुत दूर तक जा सकती हैं। सन् 1755 में जब स्पेन में भूचाल आया था तो उसके कारण उठी लहरें अटलांटिक महासागर को पार करके वेस्टइंडीज तक पहुंच गई थीं। इनकी ऊंचाई चार मीटर थी। हवाई के तट पर हाल ही में जो ज्वार-लहर आई थी उसमें बहुत



चित्र 12 : एक 'सुनामी' हवाई द्वीप से टकरायी।

से व्यक्ति मारे गए थे और सम्पत्ति को भारी क्षति पहुंची थी। यह लहर इस कारण उठी थी कि 3,200 किलोमीटर दूर एल्यूनिशयन क्षेत्र में समुद्र के नीचे भूचाल आया था। लहर जिस रास्ते से गई उसके ऊपर समुद्र में चलते जहाजों को पता भी नहीं चला कि जल के नीचे ऐसी भीषण लहर उठी है। लेकिन वह जाकर हवाई द्वीप से टकराई और वहां उसने अपनी विनाश लीला दिखा दी (चित्र 12)।

लेकिन लहरें सुंदर भी लगती हैं, समुद्र में नहाने वाले हों या तख्ते पर बैठ कर तेजी से तैरने वाले, सभी लहरों का आनंद उठा सकते हैं। जिस मौसम में समुद्र में तूफान नहीं आते, उन दिनों लोग समुद्र तट पर बसे नगरों में जाते हैं और लहरों का आनंद उठाते हैं। यदि आप तट से टकराने वाली लहरों से तनिक आगे निकल जाएं तो लहरें आपको झूले का आनंद देंगी। ऐसी लहर में तैरना बड़ा रोमांचकारी अनुभव है। जब आप लहरों पर तैर रहे होते हैं तभी आपको इस बात का आभास होता है कि समुद्र कितना अशांत है। लेकिन आपको लहरों का आनंद उठाने के लिए उपयुक्त स्थान और समय चुनना पड़ेगा।

संचलन, एक जटिल प्रक्रिया

समुद्र के जल का संतुलन एक जटिल घटना है और मानव इसे अभी तक पूरी तरह समझ नहीं पाया है। अब तक हमने इस बात की चर्चा की है कि समुद्र का जल किस प्रकार अपना स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाता है। इस प्रकार जल की गति तो होती ही है, समुद्र में और कई प्रकार की गड़बड़ होती रहती है। उनमें से एक यह है कि जल की सतह के नीचे भंवर उठते हैं। समुद्र के जल की गति को समझने के लिए हाल ही में दो प्रयोग किए गए थे। एक का नाम था सागर मध्य गतिकी प्रयोग जो 1973 में ब्रिटेन और अमरीका के वैज्ञानिकों ने किया था। इसमें छह जहाजों, दो विमानों और 15 संस्थाओं के अनुसंधानकर्ताओं ने भाग लिया था। रूसियों ने 1970 में ऐसे ही प्रयोग किए थे। उसके बाद रूस और अमरीका ने परस्पर मिल कर अनुसंधान करने की ठानी जिसमें फ्रांस, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी और कनाडा ने भी भाग लिया। इस कार्यक्रम में सैद्धांतिक खोज की योजना थी और उसके साथ ही उत्तर अटलांटिक के विभिन्न क्षेत्रों में समुद्री जल के आवागमन का पता लगाने के लिए कई प्रयोग भी किए गए जो पांच वर्ष तक चले। अब यह बात निश्चित हो गई है कि पानी के नीचे उठने वाले भंवर, वे बहुत जोर के हों या हल्के, समुद्री जल के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6

समुद्र में जीव

समुद्र में पृथ्वी की अपेक्षा अधिक प्रकार के जीव जंतु मिलते हैं और उनकी संख्या भी अधिक होती है। यह तो हम पहले ही कह आए हैं कि समुद्रों के तल का क्षेत्रफल भूमि के क्षेत्रफल की तुलना में तीन गुना है। इसके अतिरिक्त समुद्र में जल की अपार मात्रा है। यद्यपि जीवों का घनत्व पृथ्वी की तुलना में अलग हो सकता है, समुद्र में, उसका तल हो या उसके जल की सतह, सभी स्थानों पर जीव जंतु पाए जाते हैं। पृथ्वी पर समय की किसी भी इकाई को ले लीजिए, उसी समय में समुद्र में अधिक जीव जंतु पैदा होते हैं। उतने ही समय में समुद्र में जितने जीव जंतु पैदा होते हैं उनकी मात्रा अधिक है। यदि हम समुद्र में उपलब्ध खाद्य पदार्थों का उचित प्रयोग कर सकें तो संसार में भुखमरी की समस्या कभी नहीं रहेगी।

समुद्र में जीवों की विशेषताएं पृथ्वी की तुलना में बहुत अधिक हैं। उन जीवों का ढांचा और परिवेश के साथ उनका संबंध भी अलग ही प्रकार का होता है। ऐसा होना अनिवार्य ही है, क्योंकि समुद्री जीव जल में रहते हैं और जल की विशेषताओं के अनुरूप ही उनकी जीवन शैली बन जाती है। समुद्र तल पर जो जीव पाए जाते हैं उनका जीवन दो आयामों वाला जीवन होता है जैसा कि हमारा है। इनमें कुछ जीव समुद्र तल को छोड़ कर जल में तैरने लगते हैं, लेकिन जल्दी या देर में वे सभी लौट कर फिर समुद्र तल पर पहुंच जाते हैं। इस प्रकार का जीवन उन पक्षियों और कीड़ों के जीवन जैसा है जो भूमि को छोड़ कर कुछ समय के लिए वायुमंडल में ऊंचे उठ जाते हैं। जब मानव विमान में या अंतरिक्ष यान में बैठा हो तो उसका जीवन भी इन समुद्री जीवों जैसा होता है। समुद्र के तल

पर जो जीव पाए जाते है उन्हें जल के अपार दबाव का सामना करना पड़ता है और उसके साथ ही उनके लिए खाद्य पदार्थों और आक्सीजन की कमी हो जाती है (आक्सीजन समुद्र में कहां है, इसका ब्यौरा अध्याय 4 में दिया गया है)। गहरे पानी में निपट अंधकार होता है और जब समुद्री जीव शिकार के लिए निकलते हैं तो उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तट के पास समुद्र में जीवों के लिए जीवित रहना बहुत ही कष्टप्रद हो जाता है, क्योंकि लहरें और जल के आवागमन से जीव हों या पौधे, उन्हें बहुत कष्ट होता है। उनका जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। खुले समुद्र में भी समुद्री जीवों की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समुद्र के तल या पृथ्वी पर जीवन की तुलना में समुद्र में जीवन के तीन आयाम होते हैं। जीव न केवल आगे और पीछे बल्कि ऊपर और नीचे भी चल सकते हैं। कल्पना कीजिए कि मछलियों की दो टीमों में फुटबाल का मैच हो रहा हो (वास्तव में ऐसे मैच को तो थूथनी बाल मैच कहना चाहिए) ऐसे मैच में चपटा मैदान नहीं बल्कि एक चौकोर बक्सा होगा और गोल की बल्लियां लगी होंगी बक्से की दीवारों में। दर्शक इस बक्से की छहों सतहों पर बैठ सकेंगे। लेकिन वास्तव में कठिनाई होगी रैफ्री और उसके सहायकों के लिए क्योंकि गोल किसी भी दिशा से किया जा सकता है।

ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक समुद्री जीव तैरना जानता है। अधिकतर मछलियां, व्हेल मछलियां और बिना रीड़ की हड्डी वाले जीव तैर सकते हैं और इस प्रकार अपनी गतिविधियों को नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन छोटे आकार के अधिकतर जीव, जिनमें तैरने वाले जीवों के बच्चे भी शामिल हैं, जल के संचलन की दया पर जीवित रहते हैं। हमने यह देखा है कि समुद्र का जल सदा अपना स्थान बदलता रहता है और यह वायु की तुलना में बहुत अधिक घना है। इसका परिणाम यह होता है कि जल अपने में रहने वाले जीवों को इधर से उधर हटाता रहता है। यदि जल इन जीवों को प्रतिकूल परिवेश में ले जाए तो वे मर जाते हैं। यह भी हो सकता है कि वे ऐसे क्षेत्र में धकेल दिए जाएं जहां बड़े बड़े जीव उनको खा जाएंगे। ऐसा संयोग भी हो सकता है कि वे अनुकूल वातावरण में पहुंच जाएं जहां उनके विकास और उनकी संख्या बढ़ने में सुविधा होती है। उनका भाग्य संयोग पर निर्भर करता है, उनके अपने क्रियाकलाप पर नहीं।

तरणक, प्लवक और नितलीय जीव

समुद्री जीव उसके रासायनिक पहलुओं और अपने जीवन की आवश्यकताओं के

अनुसार रूप बदलते रहते हैं। जो पौधे और जीव समुद्र के तल पर या उसके पास रहते हैं, उन्हें नितलीय जीवों की संज्ञा दी जाती है। जल के तीन आयाम हैं और इनमें दो प्रकार के जीव पाए जाते हैं—एक तो वे जो तैरते हैं और दूसरे वे जो पानी में डोलते रहते हैं। तैरने वाले जीवों को तरणक और जल में डोलने वालों को प्लवक कहा जाता है। नितलीय और तरणक जीव अपेक्षाकृत बड़े आकार के होते हैं और उनकी ओर हमारा ध्यान जाना अधिक आसान होता है। लेकिन समुद्री जीवों में बहुलता उनकी है, जो प्लवक श्रेणी में आते हैं। उनकी संख्या असीम है। नाना प्रकार के पौधे और जीव जल में डोलते रहते हैं। "यद्यपि इन तीनों वर्गों में कोई सीमा रेखा खींचना संभव नहीं है, लेकिन एक बात स्पष्ट है—वह यह कि समुद्र के जल की धाराओं का प्रभाव उन जीवों पर एक प्रकार पड़ता है, जो स्थिर रहते हैं और जिन्हें अपना पेट भरने और सांस लेने के लिए जल की गति की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन वही जल की धारा किसी तैरने वाले जीव के लिए दूसरा महत्त्व रखती है, जो इच्छानुसार बहते हुए जल में तैर सकता है। जो जीव और पौधे जल में डोलते रहते हैं, (उनके लिए जल की धाराओं का एक और ही मतलब है क्योंकि वे असहाय होते हैं) और जल जिधर चाहे उन्हें ले जा सकता है" (कोकर की पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 180)।

समुद्री जीवों के परिवेश पर अब हम अधिक विस्तार से विचार कर सकते हैं। पृथ्वी के समान समुद्र में भी जीवित तत्वों का उत्पादन करने वाले पौधे ही हैं, जो समुद्री जल में घुली हुई कार्बन डाईआक्साइड को सूर्य की रोशनी की सहायता से कार्बोहाइड्रेट्स में बदल लेते हैं। सारे समुद्री जीव इन्हीं पौधों पर निर्भर करते हैं। लेकिन समुद्र में पौधे जल की सतह से 200 मीटर नीचे तक ही होते हैं। सामान्यतया इस गहराई के नीचे सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता। इसका मतलब यह है कि समुद्र के तल में पौधे केवल महाद्वीपीय शेल्फों में ही उग सकते हैं। (देखिए अध्याय 3) शैवाल जैसे पौधे भूमि पर उगने वाली झाड़ियों जैसे होते हैं जिनकी जड़ें भी होती हैं और शाखाएं तथा पत्ते भी। इस प्रकार के पौधे इस क्षेत्र में बहुत बड़ी मात्रा में उगते पाए जाते हैं। लेकिन महाद्वीपीय शेल्फ समुद्रों का एक सीमित सा क्षेत्र है जहां सूर्य का प्रकाश जल के भीतर तक पहुंचता है। इसलिए पौधों का असली क्षेत्र तो खुला समुद्र है। यह स्पष्ट है कि वहां पर वैसे ही पौधे उग सकते हैं और जीवित रह सकते हैं जो जल में डोलते रहते हैं। प्रकृति ने ऐसे ही पौधों की उत्पत्ति की व्यवस्था की है। खुले समुद्र में एक सैल वाले सूक्ष्म आकार के असंख्य जीव मिलते हैं। ये न केवल उस क्षेत्र में मिलते हैं जहां सूर्य का प्रकाश

पहुंचता है बल्कि उस क्षेत्र में भी जहां यह प्रकाश बहुत कम पहुंचता है। जल में डोलते हुए पौधों की बढ़त की दर बहुत तेज होती है।

समुद्र तल और खुले समुद्र का क्षेत्र

समुद्र तल के क्षेत्र दो आयामों वाले होते हैं और उन्हें नितलीय क्षेत्र कहा जाता है और उनके ऊपर तीन आयामों वाले जल को खुले समुद्र की संज्ञा दी जाती है। जैसे हम पहले ही कह आए हैं, तैरने वाले और जल में डोलने वाले जीव खुले समुद्र में रहते हैं। और नितलीय जीव समुद्र तल पर ही पाए जाते हैं। इन दोनों क्षेत्रों को उनके परिवेश के आधार पर छोटे और सुपरिभाषित क्षेत्रों में बांटा गया है। इनके ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में प्रत्येक क्षेत्र का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि वहां पर सूर्य का प्रकाश पहुंचता है या नहीं और वहां का परिवेश कैसा है। यह बात तो अध्याय 3 में स्पष्ट की जा चुकी है कि सूर्य का प्रकाश समुद्र में 200 मीटर की गहराई तक ही पहुंचता है। समुद्र तल के जिस भाग में सूर्य का प्रकाश पहुंचता है उसे वेलांचल (लिटोरल क्षेत्र) कहा जाता है। यह क्षेत्र महाद्वीपों और द्वीपों की सीमाओं के पास है और इसे तीन और विभागों में बांटा जाता है। एक वह क्षेत्र है जिसे **इंटरटाइडल** क्षेत्र कहा जाता है दूसरा **यूलिटोरल** क्षेत्र कहलाता है और तीसरा **सबलिटोरल** क्षेत्र। **इंटरटाइडल** क्षेत्र भूमि और समुद्र के बीच का वह भाग है जहां पर ज्वार के समय समुद्र का जल जाता है लेकिन भाटा आते ही वह क्षेत्र सूख जाता है। **यूलिटोरल** क्षेत्र सच्चे अर्थों में लिटोरल क्षेत्र है और सबलिटोरल क्षेत्र उसके नीचे है। **सबलिटोरल** क्षेत्र वह क्षेत्र है जहां तक सूर्य का प्रकाश पहुंचता है। उसके बाद का क्षेत्र **नितलीय** क्षेत्र है, जिसे पूर्व नितलीय और गहन नितलीय क्षेत्रों में बांटा जाता है। इनमें से पहला क्षेत्र लगभग 1,000 मीटर गहराई तक है और उस पर किसी हद तक भूमि का प्रभाव पड़ता है। गहन नितलीय क्षेत्र वह है जहां निपट अंधेरा रहता है और तापमान बहुत कम रहता है। यह समुद्र के तल का वह क्षेत्र है जहां न तो बदलने के साथ कोई परिवर्तन होता है और न बाहर का कोई प्रभाव पड़ता है (चित्र 5)।

खुले समुद्र के क्षेत्र को दो भागों में बांटा गया है। एक है **नेरेआइट** क्षेत्र और दूसरा **समुद्री** क्षेत्र। पहले वर्ग में वह क्षेत्र आता है जहां के जल पर महाद्वीपों का प्रभाव पड़ता हो। इसमें 200 मीटर गहराई तक का खुले समुद्र का क्षेत्र है। समुद्री क्षेत्र में बाकी का सारा खुला समुद्र आ जाता है। इस क्षेत्र में गहराई कहीं अधिक और कहीं कम होती है। गहराई के हिसाब से देखें तो समुद्र के जल को चार क्षेत्रों

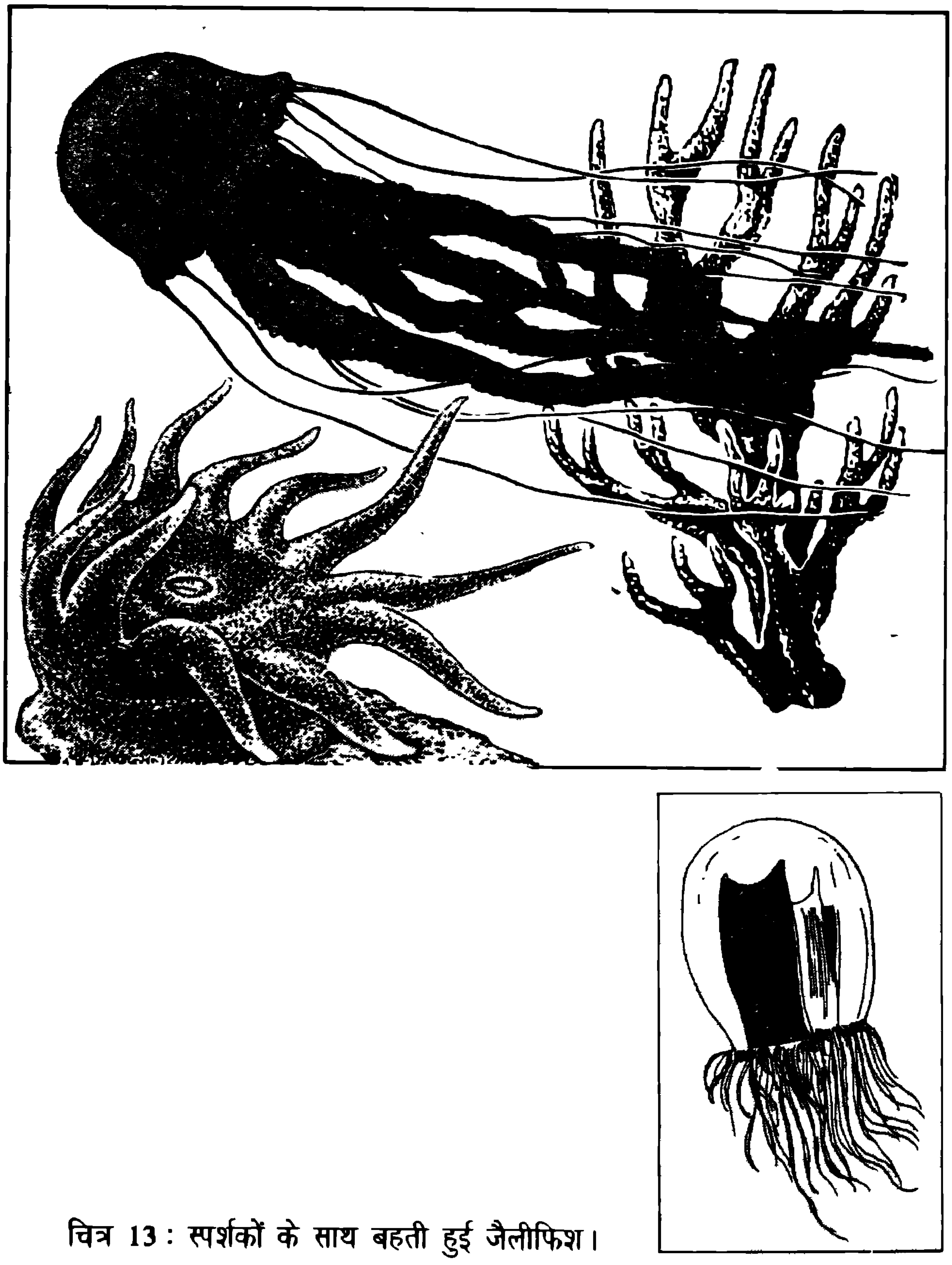
में बांटा गया है जो सभी एक दूसरे के ऊपर नीचे हैं। उनके नाम हैं—**एपीपैलेजिक, मैसोपैलेजिक, बैदीपैलेजिक** और **एबिसलपैलेजिक। एपीपैलेजिक** क्षेत्र सबसे ऊपर होता है जिसमें सूर्य का प्रकाश पहुंचता है और जहां जल में डोलते हुए जीवों की उत्पत्ति बड़ी मात्रा में होती है। उसके नीचे **मैसोपैलेजिक** क्षेत्र है जहां बहुत धुंधला प्रकाश होता है क्योंकि यहां पर प्रकाश समाप्त होता है और अंधकार का क्षेत्र प्रारंभ हो रहा होता है। **बैदीपैलेजिक** क्षेत्र का आकार बहुत बड़ा है जहां सूर्य का प्रकाश कभी नहीं पहुंचता। लेकिन यहां पर जल चलता रहता है। उसके नीचे समुद्र की सतह से 2,000 मीटर नीचे **एबिसलपैलेजिक** क्षेत्र है जहां पूर्ण अंधकार है, तापमान बहुत कम है और किसी प्रकार की ध्वनि नहीं है। यह जल का ऐसा अज्ञात संसार है जिसका पृथ्वी या सूर्य से कभी कोई संपर्क नहीं होता।

प्लवक

प्लवक जीवों को दो वर्गों में बांटा जाता है। एक है **पाद प्लवक** (फाइटोप्लैंक्टन) और दूसरा **प्राणी प्लवक** (जूप्लैंक्टन)। प्राणी प्लवक पाद प्लवक को खाकर जीते हैं। पाद प्लवक जल के उस क्षेत्र में होते हैं जहां सूर्य का प्रकाश जाता है। लेकिन प्राणी प्लवक अधिक गहराई में पाए जाते हैं। फिर भी उनका भोजन पाद प्लवक ही हैं, जो गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे को गिरते रहते हैं। पाद प्लवक और प्राणी प्लवक खुले समुद्र की जीव व्यवस्था में रूप भेद के उदाहरण हैं। प्लवक जीवों (चाहे वे पौधे हों या जीव) की मुख्य समस्या यह होती है कि वे जल में डोलते रहें और गुरुत्वाकर्षण का उन पर कोई प्रभाव न पड़े। प्रत्येक जीव आसपास के जल की तुलना में घना होता है और उसमें प्राकृतिक प्रवृत्ति गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में आकर समुद्र तल की ओर गिर पड़ने की है। इसी प्रवृत्ति से जूझने के लिए प्लवक जीवों ने अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लिया। उनमें से बहुत से अपने छोटे आकार के कारण जल में डोलते रहते हैं। दूसरा तरीका यह है कि उनका आकार बड़ा हो लेकिन वजन कम जिससे कि वे जल में डूब न जायें। मानव ने ग्लाइडर और पैराशूट का आविष्कार करने में इसी सिद्धांत का सहारा लिया है।

प्लवकों को, उनके आधार पर, चार वर्गों में बांटा गया है—(1) **मैक्रोप्लैंक्टन** (अर्थात् बड़े आकार के प्लवक) जिनमें प्लवक पौधे, जैसे पतवार और जीव, जैसे जैली फिश (चित्र 13), लार्वा, स्टैनोफोस, ऐसीडियन आदि आते हैं। वे न केवल बिना सूक्ष्मदर्शी यंत्र के देखे जा सकते हैं बल्कि मछली पकड़ने के जाल में पकड़े

भी जा सकते हैं। (2) **माइक्रोप्लैंक्टन** (अर्थात् छोटे आकार के प्लवक) जिनमें डायाटोम्स, फ्लैजलैट्स, कोपपोड्स और कई जीवों के अंडे हैं, जिन्हें आर्गेंडी या रेशम के बने जालों में पकड़ा जा सकता है। (3) **नानोप्लैंक्टन** (अर्थात् बहुत ही सूक्ष्म आकार के प्लवक) जिनमें कोकोलिथोफेयर, केंकड़ों आदि के नन्हें नन्हें अंडे आदि आते हैं। इन्हें महीन से महीन जाल में नहीं पकड़ा जा सकता, लेकिन जल को अपकेंद्रक पंप की सहायता से आलोड़ित करके इकट्ठा किया जा सकता है। (4) **अल्ट्राप्लैंक्टन** (अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म प्लवक) जिनमें कीटाणु, सूक्ष्म अंडे आदि आते हैं। इन्हें जल को अपकेंद्रक पंप की सहायता से आलोड़ित करके भी अलग नहीं किया जा सकता।



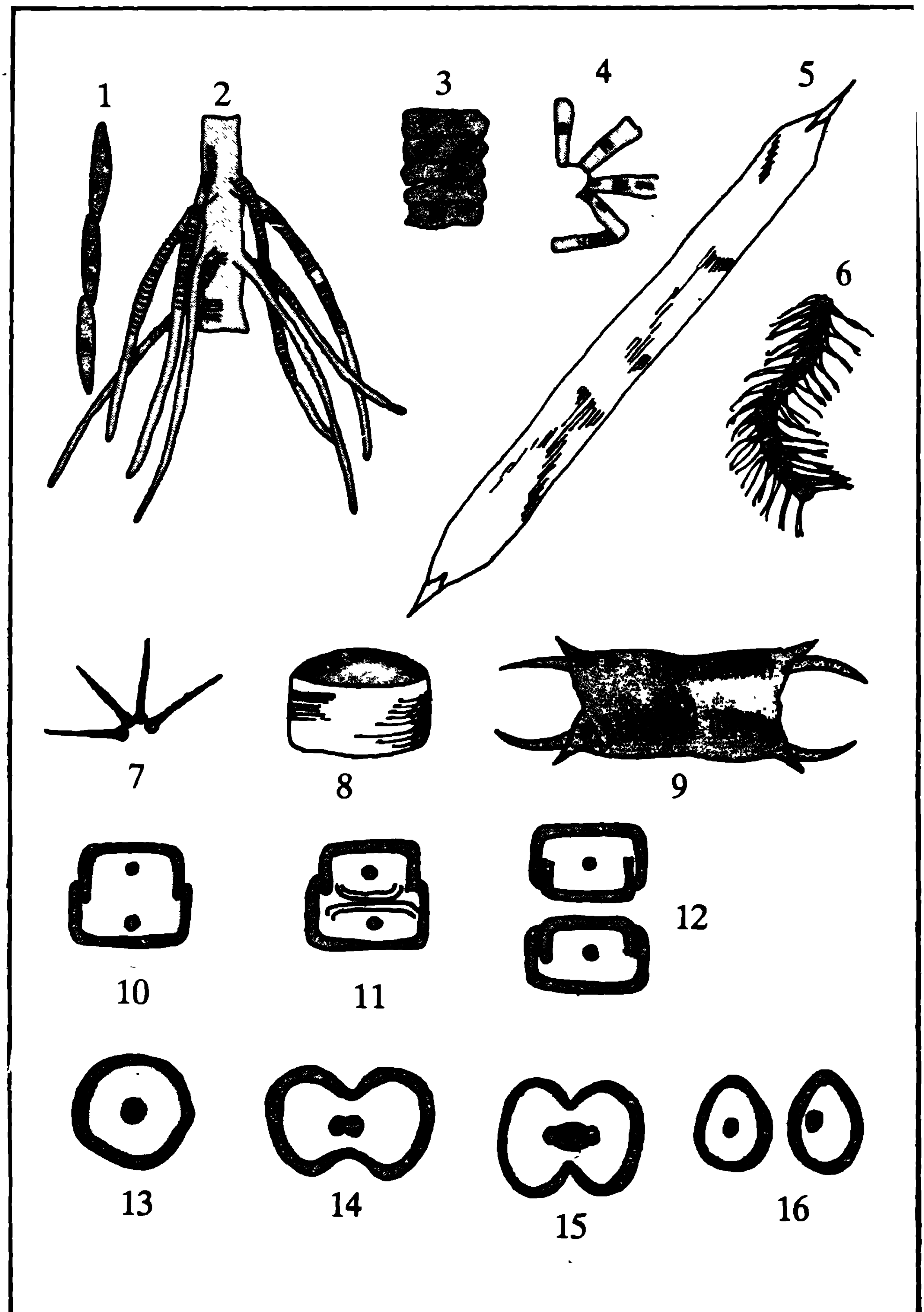
चित्र 13 : स्पर्शकों के साथ बहती हुई जैलीफिश।

इस प्रकार का वर्गीकरण केवल सुविधा के लिए है और वर्गीकरण विज्ञान की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं।

प्लवकों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जाता है कि वे तापमान और लवणता को कितना सहन कर सकते हैं। विभिन्न समुद्रों और उनके भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और तहों में लवणता, तापमान और अन्य तत्त्वों में बड़ी अधिक भिन्नता है। कुछ ऐसे जीव और पौधे होते हैं जो इस प्रकार की भिन्नता को सह जाते हैं और उनके शरीर को कोई हानि नहीं पहुंचती। जो जीव और पौधे हर प्रकार की लवणता को सह जाते हैं उन्हें **यूरीहैलीन** की संज्ञा दी जाती है। और जो नहीं सह सकते उन्हें **स्टैनोहैलीन** कहा जाता है। इसी प्रकार जो जीव और पौधे हर प्रकार के तापमान को सह जाते हैं **यूरीथर्मल** कहलाते हैं और जो नहीं सह सकते उन्हें **स्टैनोथर्मल** कहा जाता है। यूरीथर्मल और यूरीहैलीन जीव तटों के नजदीक अधिक मिलते हैं, क्योंकि उन क्षेत्रों में समुद्री जल की लवणता और तापमान में बहुत भिन्नता होती है। "समुद्री प्लवकों के जीवन की परिस्थितियों की एक विशेषता इस कारण उत्पन्न होती है कि वहां के परिवेश का स्वरूप अत्यंत परिवर्तनशील है। समुद्री प्लवक जिस धारा में रहते हैं वह हर समय डोलता रहता है। वहां पर यह डोलन नियमित भी होता है और बंदरगाहों से टकरा कर ज्वार-लहरें भी आती हैं या जल की धाराएं सक्रिय होती हैं, अथवा खुले समुद्र में भंवर पड़ते हैं। उनका निवास किसी स्थिर भौगोलिक स्थान पर नहीं होता। ये प्लवक जल में डोलते ही रहते हैं क्योंकि उनमें अपने निवास पर नियंत्रण रखने की योग्यता नहीं होती (कोकर की पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 216)। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जो प्लवक तापमान, लवणता, प्रकाश और दबाव आदि को सह सकते हैं, वही समुद्र के खतरों भरे परिवेश में जीवित रह सकते हैं।

पाद प्लवक

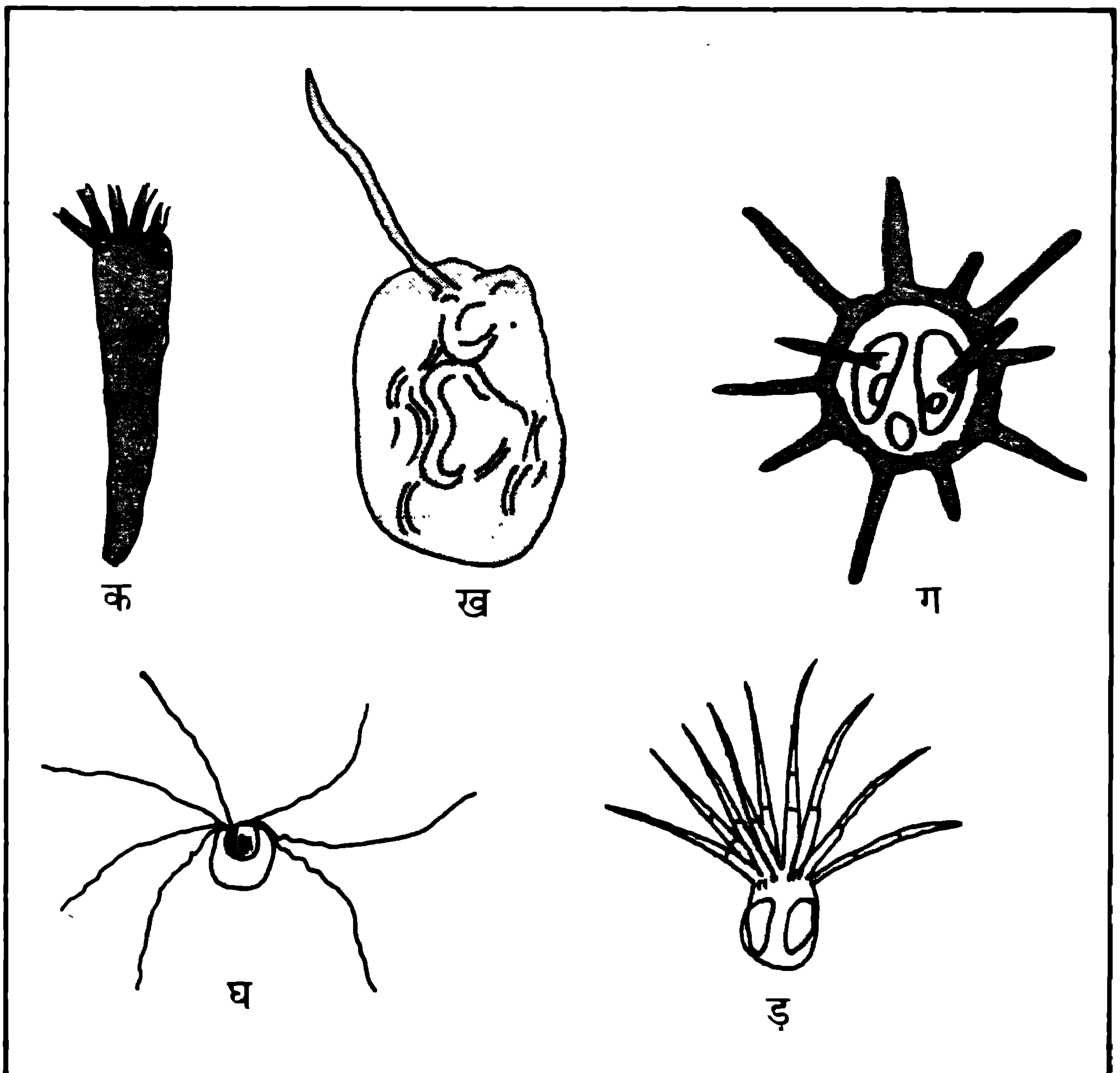
समुद्र में कहीं से भी एक गिलास में जल भर लीजिए और उसे सूर्य के सामने करके देखिए। आप ध्यान से देखेंगे तो पता चलेगा कि उसमें बहुत से कण तैर रहे हैं। ये कण सूक्ष्म पौधे और जीव होते हैं। जल भरे गिलास को एक दो दिन पड़ा रहने दीजिए और उसके बाद उसे निथार लीजिए। फिर भी आपको गिलास की तह में महीन धूल की एक बड़ी पतली परत दिखाई देगी। इसे यदि आप सूक्ष्मदर्शी यंत्र में रख कर देखें तो आप बहुत से प्लवक पौधों और जीवों को पहचान जाएंगे। प्लवक पौधे और जीव सभी समुद्रों में मिलते हैं और समुद्र की सतह से



चित्र 14 : विभिन्न प्रकार के डायाटोम्स (1-9) तथा एक विशेष डायटोम के विकास के विभिन्न चरण (10-16)

1,000 मीटर नीचे तक अवश्य दिखाई पड़ते हैं। हां, उनकी सघनता में भिन्नता हो सकती है।

पाद प्लवक दो मुख्य वर्गों में बांटे जा सकते हैं—एक हैं **डायाटोम्स** (चित्र 14) और दूसरे **फ्लजलेट्स** (चित्र 15)। डायाटोम्स सूक्ष्म गोलाकार बक्से से होते हैं जबकि फ्लजलेट्स गोलाकार थैलियों जैसे होते हैं, जिनके बाहर बाल से निकले हुए होते हैं जिनकी सहायता से वे जल में तैर सकते हैं। दोनों एक सैल वाले शैवाल के रूप में होते हैं और उनकी संख्या उनके बंट जाने से बढ़ती रहती है। दूसरे अर्थ में जब यह पौधा पूरा विकसित हो जाता है तो उसके दो भाग हो जाते हैं और दोनों भाग फिर मुख्य पौधे के आकार को प्राप्त कर लेते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में विकास की यह प्रक्रिया दो घंटे में पूरी हो सकती



चित्र 15 : विभिन्न प्रकार के फ्लजलेट्स।

है। इस प्रकार उनकी संख्या बढ़ने की संभावना असीम होती है। उनके जल में डोलते रहने की योग्यता बढ़ाने के लिए प्रकृति ने उनमें कई रूप भेद कर दिए हैं। इस रूप भेद में एक थैली, सूई जैसा अंग या बाल से उग आते हैं या फीते जैसे बन जाते हैं। उनके सूक्ष्म शरीरों में बहुधा तेल पाया जाता है जिससे कि उसका घनत्व कम हो जाए। यद्यपि ये एक सैल वाले प्राणी होते हैं, इनकी कई प्रजातियों में अलग अलग जीव परस्पर जुड़े हुए होते हैं। इस कारण शरीर के आकार और उसके वजन के बीच का अनुपात बहुत बढ़ जाता है। दोनों प्रकार के पाद प्लवकों में हजारों प्रकार की प्रजातियां पाई जाती हैं। यद्यपि यह दिखाई नहीं पड़ते, ये समुद्र में जीवित तत्वों के उत्पादक हैं। समुद्र के सभी जीव इन्हीं को अपना भोजन बनाते हैं।

डायटोम्स अन्य प्रकार के पौधा प्लवकों से इस बात में भिन्न होते हैं कि उनके शरीर का बाहरी ढांचा सिलिकामय होता है (अर्थात् वह रेत से बना होता है) और आसानी से गलता नहीं है। जब डायाटोम्स अपनी आई मर जाते हैं तो उनके खोल समुद्र के तल पर जा गिरते हैं और तल पर पाए जाने वाले भंडारों का महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। यह बात विशेषरूप से उन समुद्रों पर लागू होती है जहां तापमान अधिक होता है। इन भंडारों को डायाटोम की तलछट कहा जाता है और ये कई सौ मीटर मोटी तहों में होते हैं। इनकी प्रजनन दर अनुकूल परिस्थितियों में इतनी अधिक होती है कि विश्वास नहीं होता। एक डायाटोम एक महीने में दस करोड़ तक बच्चे पैदा कर सकता है। लेकिन इनकी संख्या इस कारण सीमित रहती है कि जीव प्लवक इन्हें खाते रहते हैं। "यद्यपि एक तट से दूसरे तट तक और ऊपरी सतह से लेकर तल तक समुद्रों में जीव होते हैं, फिर भी प्रारंभ में इनकी उत्पत्ति प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से होती है, जो समुद्र के ऊपरी भाग में ही संभव है जहां सूर्य का प्रकाश आता है। सूक्ष्म पौधों की तह अपेक्षाकृत पतली होती है। उन्हें न केवल अपने ही स्तर के जीवों का भोजन बनना होता है, बल्कि उनका शिकार करने वाले और जीव भी हैं, जो समुद्र के निचले प्रदेशों में रहते हैं जहां सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच पाता। इसके लिए यह आवश्यक है कि इन पौधों की अधिकता बनी रहे और ये तेजी से बढ़ते भी रहें, जिससे कि जो पौधे हर समय जीवों का भोजन बनते हैं उनका स्थान लेने वाले और पौधे पैदा हो जाएं" (कोकर की पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 198)। एक कोपपोड (यह प्राणी प्लवक की एक प्रजाति है) एक दिन में एक लाख से अधिक डायाटोम्स को खा जाता है। कोपपोड्स का जीवन कई महीने का होता है और उनकी संख्या और प्रजातियां

अनंत हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि कोपपोड नाम के जीव कितने डायाटोम्स को खा जाते होंगे।

पाद प्लवक का दूसरा अंग फ्लजलेट्स हैं। एक या अधिक फ्लजलेट ढांचे हों तो वे प्लवक जीवों के समान गतिशील हो जाते हैं। लेकिन प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न रंगों के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पौधे हैं, जीव नहीं। फ्लजलेट्स के कई समूह होते हैं। उनमें से एक है डायनोफ्लजलेट्स का समूह जो डायाटोम्स के बाद समुद्र की अर्थव्यवस्था में सबसे अधिक महत्त्व रखता है, विशेषरूप से ऊष्ण कटिबंध में। फ्लजलेट्स के ढांचे सैल्यूलोस के बने होते हैं। बहुधा उनमें बहुत रंग होता है और उसी के कारण समुद्र के जल में भी रंग आ जाता है। सच तो यह है कि लाल सागर का नाम इसी कारण पड़ा कि उसमें ट्रिकोडेसिमियम ऐरी थ्रेरियम नाम के फ्लजलेट्स बहुत मात्रा में मिलते हैं। हमारे तट पर समुद्र के जल में पीला, हरा, भूरा या लाल रंग कहीं कहीं दिखाई पड़ता है जो इस बात का सूचक है कि वहां पर रंग वाले फ्लजलेट्स हैं। कुछ फ्लजलेट ऐसे हैं जो बड़ी संख्या में हों तो अन्य जीवों के लिए हानिकारक होते हैं, क्योंकि उनके शरीर से कुछ विषाक्त पदार्थ निकलते हैं। एक डायनोफ्लजलेट, जिम्नोडीनियम ब्रविस ऐसा है जो विनाशकारी लाल ज्वार को जन्म देता है, जिसमें मछलियां भी बहुत संख्या में मारी जाती हैं।

डायनोफ्लजलेट एक और प्राकृतिक घटना को जन्म देते हैं जिसे जीव संदीप्ति (कुछ जीवों की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाला प्रकाश) कहा जाता है। बहुत से तटीय क्षेत्रों में जहां समुद्र के जल में डायनोफ्लजलेट बहुत बड़ी संख्या में होते हैं, जल में प्रकाश सा दिखाई देता है। यदि आप ऐसे क्षेत्रों में रात के समय समुद्री जल पर दृष्टिपात करें तो आपको लहरों में चमक सी दिखाई देगी मानो वहां बिजली के सैकड़ों बल्ब जला दिए गए हों। भारत के तटीय क्षेत्रों में वसंत ऋतु में इस प्रकार की चमकती हुई लहरें बहुधा दिखाई देती हैं।

एक प्रकार का फ्लजलेट गुल्याश्मघर (कोकोलिथोफेयर) है। इस जीव की ऊपरी परत चूने की होती है। इनके खोल बहुत बड़ी मात्रा में समुद्र तल पर मिलते हैं। ऐसे खोल या कवल बड़े सुंदर होते हैं, जिन पर बेल बूटे से कढ़े दिखाई पड़ते हैं। गुल्याश्मघर नामक जीवों का आकार इतना सूक्ष्म होता है कि इन्हें रेशम के बने जालों में भी इकट्ठा नहीं किया जा सकता। इसलिए इन्हें विशेष बोतलों में इकट्ठा किया जाता है और फिर सेंट्रीफ्यूज नाम के उपकरण की सहायता से संकेंद्रित किया जाता है। अपने सूक्ष्म आकार के कारण कोकोलिथो खोल और अन्य प्लैंक्टनों को (जिनमें न केवल फाइटोप्लैंक्टन बल्कि जूप्लैंक्टन और जीवाणु भी शामिल हैं)

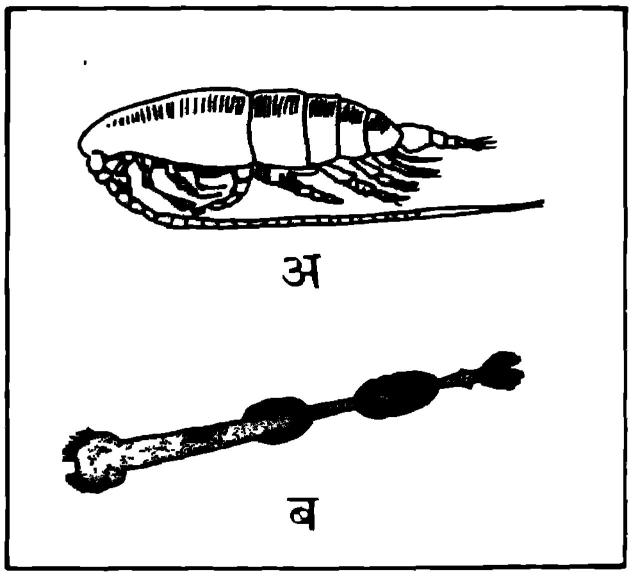
नानोप्लैंक्टन कहा जाता है। अनुमान लगाया गया है कि जल के एक लीटर में कोकोलिथोफेयर की संख्या दस लाख तक होती है। विभिन्न प्रकार के डायाटोमों, डायनोफ्लजलेटों और नानोप्लैंक्टन को **समुद्री घास** की संज्ञा दी गई है। ये प्रकाश संश्लेषण की दीप्ति ऊर्जा पर निर्भर करते हैं और कुछ अकार्बनिक पौष्टिक तत्व भी (जैसे कार्बन डाइआक्साइड, जल, नाइट्रेट, फास्फोरस और लोहा) इनके लिए आवश्यक हैं। इस कारण यह समुद्री घास कार्बन के कई मिश्रण तैयार कर सकती है। पौधों की इन छोटी कोशिकाओं में जो ऊर्जा निहित है, उसी के जीवन की प्रक्रियाओं के लिए रासायनिक ऊर्जा प्राप्त होती है। अनुमान लगाया गया है कि समुद्री घास से प्रति वर्ष 80 से 120 अरब टन कार्बोहाइड्रेट की उत्पत्ति होती है जबकि भूमि पर उगने वाले पौधे चालीस अरब टन कार्बोहाइड्रेट को जन्म देते हैं। इसी कार्बोहाइड्रेट से फाइटोप्लैंक्टन प्रोटीन और वसा तैयार करते हैं। यह पता लगाया गया है कि इन जीवों के कुल वजन का 40 से 50 प्रतिशत प्रोटीन होती है, 20 से 40 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट और 20 से 25 प्रतिशत तक वसा (यासो, ओशियोनोग्राफी, होल्ट, राइनहार्ट और विंस्टन, पृष्ठ 132)।

जूप्लैंक्टन (प्राणी प्लवक)

जल के पौधों की तुलना में उसमें तैरते हुए सूक्ष्म जीव अधिक विविध हैं। प्राणी प्लवकों की जटिलता और उनके विभिन्न रूपों का वर्णन कुछ पृष्ठों में करना असंभव है। इसलिए हम उन पर एक उचटती सी नजर डालेंगे।

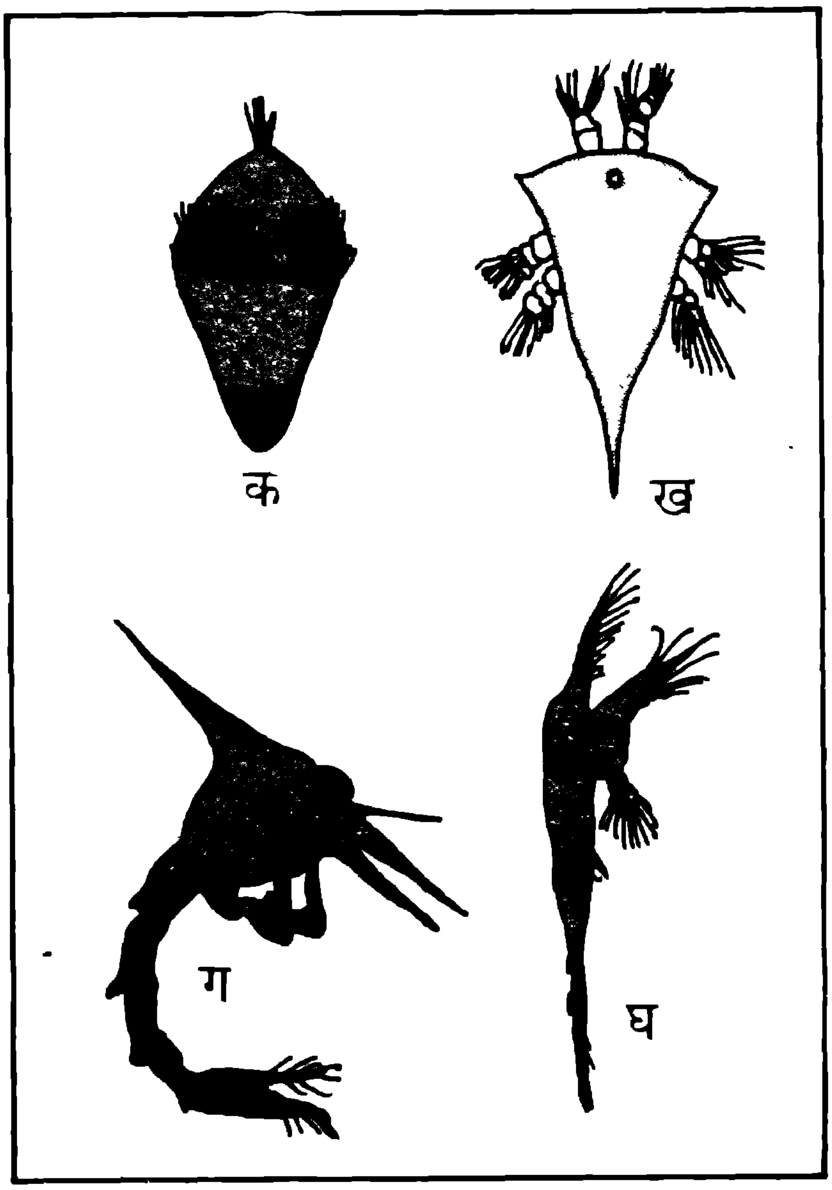
प्राणी प्लवकों को दो भागों में बांटा जा सकता है—एक तो है **पूर्ण प्लवक** (चित्र 16) और दूसरा **आंशिक प्लवक** (चित्र 17)। पूर्ण प्लवक प्लवकों का विकसित रूप हैं और उनके स्थायी अंग भी। आंशिक या अपूर्ण प्लवक प्लवकों का प्रारंभिक रूप है। उसके बाद वे या तो पूर्ण प्लवक बन जाते हैं और या नैक्टोन या बेनफोस का रूप ले लेते हैं। उनके जीवन की यह अवस्था कुछ दिन से कुछ महीने तक रहती है। मात्रा और विविधता की दृष्टि से यह अस्थायी रूप प्राणी प्लवकों के स्थायी तत्वों की तुलना में कम महत्त्व का नहीं है। प्राणी प्लवक जिन खाद्य पदार्थों पर निर्भर करते हैं उनकी दृष्टि से उन्हें शाकाहारी या मांसाहारी वर्गों में बांटा जा सकता है।

ये दोनों पौधे प्रोटीन को जीव प्रोटीन के रूप में परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह वही प्रोटीन है जो मछलियों या उन समुद्री जीवों में पायी जाती है जो मानव के भोजन के रूप में काम आते हैं।



चित्र 16 : दो विशिष्ट प्लवक जीव : (अ) कोपपोड, (ब) एरोवर्म

प्लवक जीवों में सभी प्रकार के जीव आ जाते हैं जिनमें प्रोटोजोआ से लेकर मेरुदंड वाले जीव भी हैं, जिन्हें कशेरुक कहा जाता है। ये अविकसित या विकसित

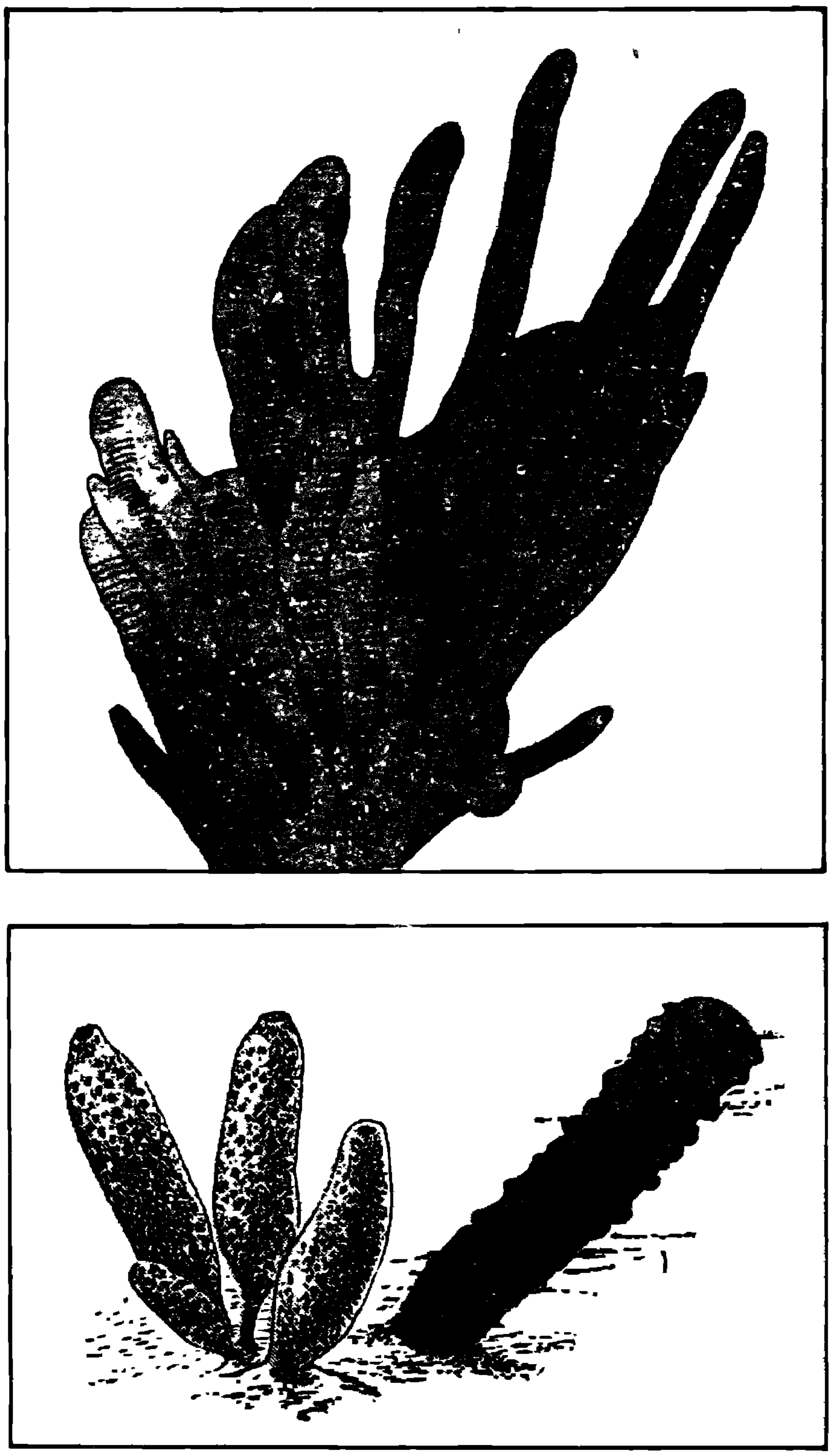


चित्र 17 : कुछ आंशिक प्लवक। (क) नीरिद कीड़े का ट्रोकोफोर रूप, (ख) बारनेकल का नोपलियस रूप, (ग) केकड़े का जोया रूप और (घ) कोपपोड का नोपोलियस रूप। प्लवकों में कुछ समय बिताने के बाद आंशिक प्लवक पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है और फिर वह नेक्टोनिक, प्लेक्टोनिक या बैन्थिक हो जाता है।

दोनों रूपों में उपलब्ध होते हैं। एक सैल वाले **प्रोटोजोआ** सभी समुद्रों में सभी ऋतुओं में उपलब्ध होते हैं। फोरेमिनीफेरा नाम के जीवों का एक उदाहरण है **ग्लोबीगैरिना** जिनके खोल चूने के होते हैं। इनमें लघु कंटिका जैसी व्यवस्था होती है, जिसके कारण ये जल में तैरते रहते हैं। करोड़ों वर्षों से चले आ रहे ये छोटे छोटे खोल बहुत बड़ी मात्रा में समुद्र के तल पर जमा हो जाते हैं और इन्हें **ग्लोबीगैरिना ऊज** कहा जाता है। इन जीवों के विभिन्न रूप सभी समुद्रों, विशेष रूप से ऊष्ण प्रदेशीय समुद्रों में मिलते हैं। प्रोटोजोआ का एक और प्रकार **रेडियोलारियन** नाम का जीव है जिसका खोल सिलिका का होता है, चूने का नहीं। इन खोलों पर लंबी धारियां होती हैं और इन धारियों के कारण ये जीव जल में तैरने में क्षमता प्राप्त करते हैं। समुद्र के तल पर जो खोल जमा होते रहते हैं वे हजारों प्रकार के चमकीले डिजाइनों में होते हैं। प्रशांत महासागर के ऊष्ण प्रदेशीय भाग में समुद्र तल पर इस प्रकार के जीवों की भरमार है। नोक्टील्यूकन नाम के जीवों की महत्ता का कारण है कि जहां वे बड़ी मात्रा में होते हैं वहां रात के समय समुद्र का जल चमकता हुआ दिखायी देता है, मानो किसी ने वहां बिजली का प्रकाश कर दिया हो।

प्लवकों में स्पंज (चित्र 18) होते हैं और वे लारवा के रूप में तैरते रहते हैं। इनके विकसित और अविकसित रूप में कोलियेंटेरेट पाये जाते हैं। इन जीवों का उत्कृष्ट उदाहरण कोरल, सी लिलि, सी फैन आदि हैं जो नितिलस्थ जीव हैं। लेकिन इन सभी की प्रारंभिक अवस्था लारवा के रूप में होती है, ये जीव लहरों के साथ इधर से उधर जाते रहते हैं। लहरें इन्हें नए क्षेत्रों में पहुंचा देती हैं। जेली फिश जैसे अन्य कोलियेंटेरेट भी पाये जाते हैं। तट के जल में जेली फिश दिखायी पड़ जाती है और यदि उसका आकार छोटा हो तो बाल्टियों में उन्हें इकट्ठा किया जा सकता है। उनके शरीर छाते के समान होते हैं और वे जल में लयपूर्ण गति से डोलते दिखायी दे जाते हैं (चित्र 13)।

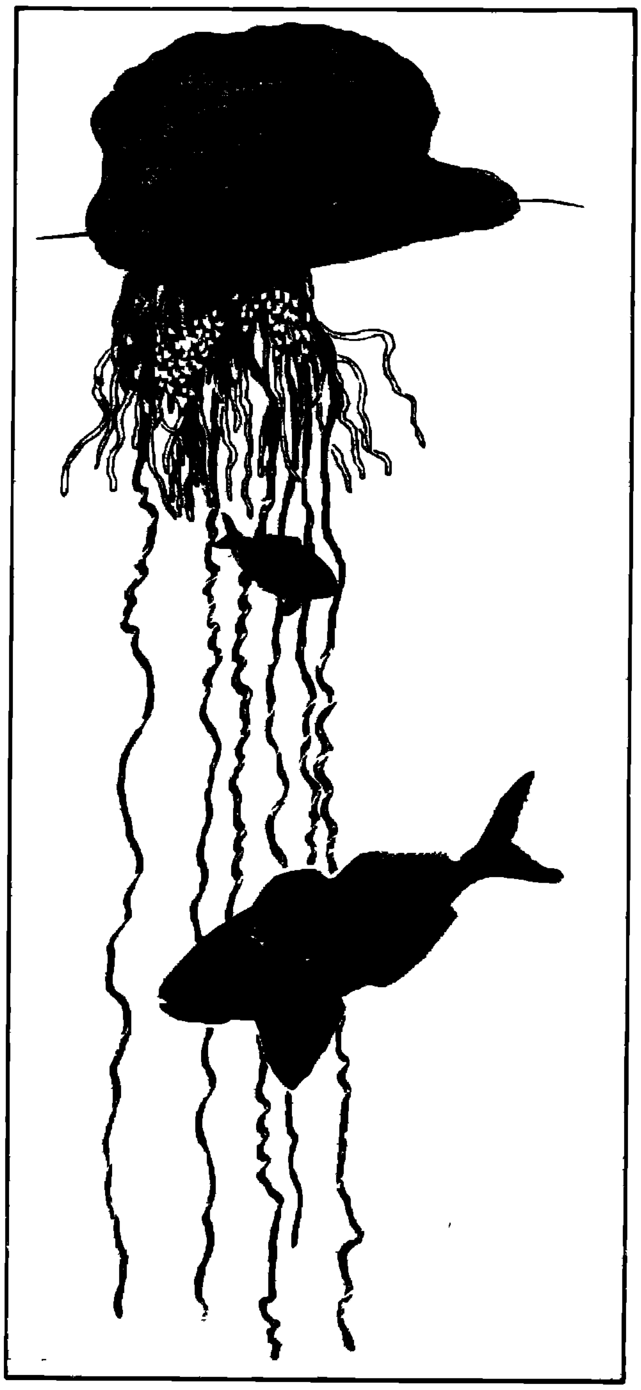
सीलेंटेरेट (गुहान्त्र) नाम के जीव जल में तैरते रहते हैं और नाविक इनसे भलीभांति परिचित हैं। इनके अजीब अजीब नाम रखे गये हैं जैसे—**पोच्यूगीज मैन आफ वार** (चित्र 19) और **बाई दि विंड सेलर,** ये नाम उनके अद्‌भुत रूपों के कारण दिए गए हैं। इनका रंग बहुत चमकीला होता है और इनके रूप हैं जो विभिन्न कृत्यों के लिए प्रसिद्ध हैं। जैसे उनमें से कुछ अन्य जीवों पर पलते हैं, तैरते रहते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हैं और अपनी नस्ल बढ़ाते हैं। ये कहां पर मिलेंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि लहरें इन्हें किस तरफ



चित्र 18 : स्पंज अहानिकारक दिखते हैं, लेकिन क्रियाशील जीव हैं।

ले जाती हैं। लेकिन इसके साथ ही ये स्वयं भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकते हैं।

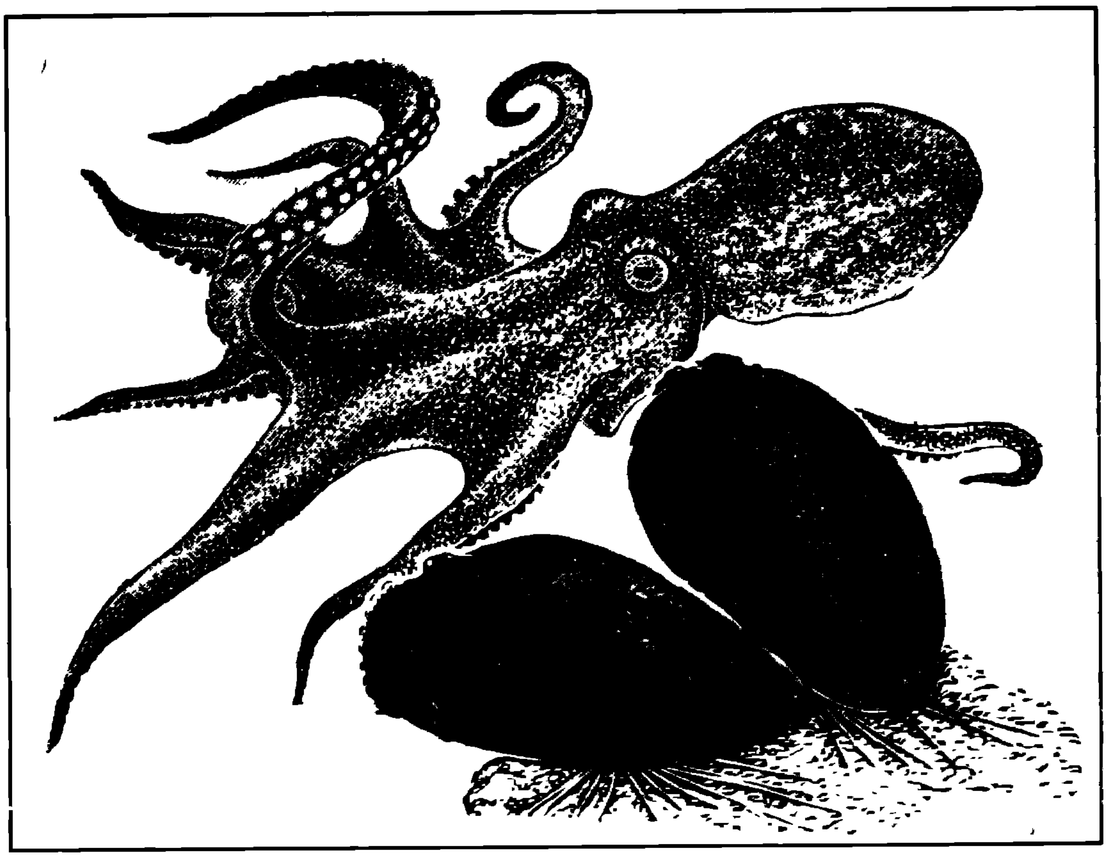
समुद्र में पाये जाने वाले कीड़ों के कई प्रकार हैं लेकिन इनमें से कुछ ही ऐसे हैं जो प्लवक की श्रेणी में आते हैं। टोमोपैरिड्स एक अपवाद है क्योंकि वे पूरी तरह प्लवक के रूप में जीवन बिताने के लिए विकसित होते हैं। उनके शरीर के दोनों ओर पंख से होते हैं जिनकी सहायता से वे जल में तैरते रह सकते हैं। प्रशांत महासागर में पाया जाने वाला एक विशेष कीड़ा पालोलो नाम का है। "विकसित रूप में यह कीड़ा तल पर रहता है और जब उसके बच्चे देने का समय आता



चित्र 19 : पोर्च्यूगीज युद्ध-पोत नामक जीव कोई एक नहीं, वरन् विभिन्न जीव हैं, जो एक साथ रह कर भोजन के कार्य को बांट लेते हैं।

है तो उसके शरीर का एक अंग, जिसमें प्रजनन कोशिकाएं होती हैं, शरीर से अलग हो जाता है। प्रजनन अंग समुद्र की सतह पर आ जाते हैं और फिर उसमें से अंडे निकलने शुरू हो जाते हैं। सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि यह कीड़ा प्रतिवर्ष नियमित रूप से समुद्र की सतह पर दिखाई देता है। पहले से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कब दिखाई पड़ेगा और समोआ, फिजी और अन्य द्वीपों के निवासी इन कीड़ों को जाल की सहायता से पकड़ने के लिए निकल पड़ते हैं क्योंकि ये उनके भोजन का अंग हैं" (कोकर का पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 225)।

कीटोग्नैक (एरोवर्म) नामक जीव प्लवक जीव है। इसका आकार अधिक से अधिक आठ सेंटीमीटर होता है और वह बड़ी तेजी से अपना स्थान बदलता है। जीव विज्ञान की दृष्टि से इस जीव का बड़ा महत्त्व है क्योंकि इसी को देख कर यह पता चलता है कि समुद्र का जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे पहुंचता है। एकाइनोडर्म समुद्र तल पर पाया जाने वाला जीव है, जिसका आकार तारे जैसा होता है। लेकिन कई प्रकार के एकाइनोडर्म के लारवा तटीय प्लैंक्टन में पाये जाते हैं। मोलस्क की भी यही कहानी है। बहुत से बेंथोस और नेक्टोनिक मोलस्क (जैसे ओएस्टर, क्लैम लिंपट, कोंच, समुद्री घोंघे आदि) (चित्र 20) लारवा के रूप में समुद्र में घूमते रहते हैं। कुछ दिन या सप्ताह तक प्लवक के रूप में रहने के बाद इनका लारवा समुद्र तल पर बैठ जाता है या अन्य ठोस पदार्थों के साथ जुड़ जाता है। लारवा जल के साथ विभिन्न क्षेत्रों तक पहुंच जाता है और इस कारण एकाइनोडर्म और मोलस्क के लिए दूर दूर तक पहुंचना संभव हो जाता है। इसी कारण यह जीव विभिन्न समुद्रों में पाया जाता है।



चित्र 20 : मोलस्क जाति के जीव, क्लैम, ओयस्टर्स और आक्टोपस

हैटेरोपोड और टेरोपोड जैसे कुछ मोलस्क पूर्णतया प्लवक होते हैं। इनके शरीर में ऐसी व्यवस्था होती है कि वे जल में तैरते रह सकते हैं। नितलीय जीवों के समान इन मोलस्कों के खोल भी बड़ी मात्रा में ऊष्ण प्रदेशीय समुद्रों के तल पर इकट्ठे हो जाते हैं। टेरोपोड के लारवा विशेषरूप से ऊष्ण प्रदेशीय समुद्रों में मिलते हैं।

प्लवकों में सबसे बड़ा वर्ग फाइलम आर्थ्रोपोडा का है। पृथ्वी पर भी इस वर्ग के जीव बहुत बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं जिनमें चींटियां, भंवरे, तितलियां, मकड़ियां और कनखजूरे आदि हैं। आर्थ्रोपोडा में जीवों के कई वर्ग आ जाते हैं। समुद्र में सबसे अधिक तो क्रस्टेशिया वर्ग के जीव हैं। (जिसमें बहुत से पैर होते हैं) क्रस्टेशिया वर्ग को समुद्र की अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जीव कहा जा सकता है। ये प्लवक नैक्टोन और बेंथोस सभी में मिलते हैं। समुद्र में इस वर्ग के जीव उतने ही विविध हैं जितने कि पृथ्वी पर पाये जाते हैं।

क्रस्टेशिया वर्ग के जीवों का सबसे अधिक प्राचुर्य प्लवकों में है। इनमें भी सबसे अधिक संख्या कोपपोड्स की है। अन्य प्रकार के प्लवक क्रस्टेशिया वर्ग में भी हैं जैसे क्लैडोसिरान, मीसाइड, एंफीपोड और यूफोसाइड आदि। लेकिन प्लवकों में लगभग 75 प्रतिशत कोपपोड होते हैं। यह कहा जा सकता है कि वे समुद्र की सतह पर सबसे अधिक मात्रा में पाए जाने वाले जीव हैं। यह कहना अतिशयोक्ति

न होगी कि यदि कोपपोड न होते तो समुद्री जीवों में उतनी विविधता और बहुलता न होतीं जितनी कि आज दिखायी पड़ती है। कोपपोड्स बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे कि पृथ्वी पर ढोर जो कि पौधों को पशुओं के मांस में परिवर्तित करते हैं। समुद्र की मछलियां और बड़े आकार के सभी जीव कोपपोड खाकर ही जीते हैं। ये स्वयं बहुत बड़ी मात्रा में भोजन करते हैं और दूसरे जीवों का भोजन भी बनते हैं। समुद्रों के भोज्य पदार्थों में कोपपोड्स का बहुत बड़ा महत्त्व है।

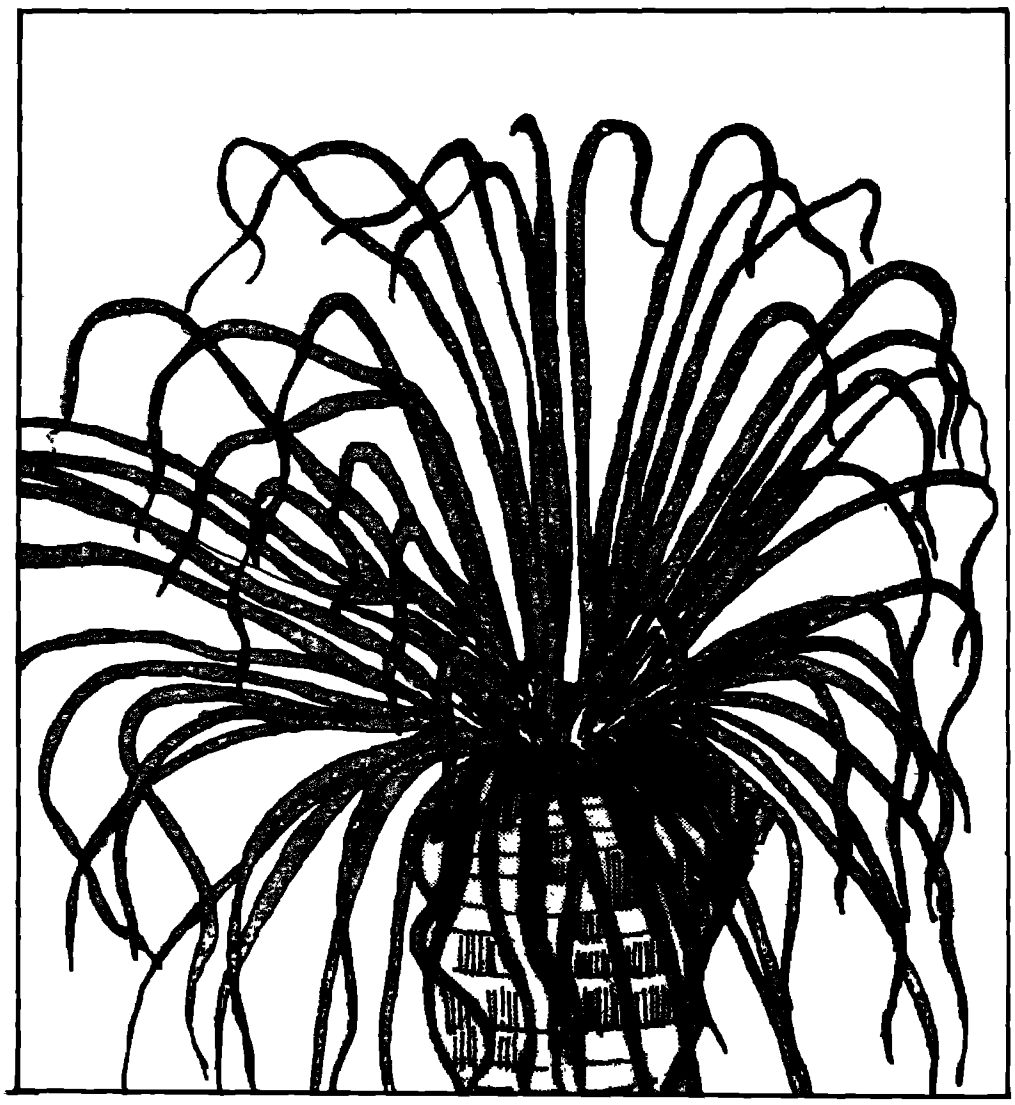
बेंथोस (नितलीय जीव)

बेंथोस या नितलीय जीव समुद्र तल पर या उसके समीप रहते हैं इनमें पौधे भी हैं और जीव भी। पौधे तो तटों के पास संकरे महाद्वीपीय शेल्फों में ही होते हैं। वे अधिक गहरे जल में नहीं उगते, क्योंकि सूर्य का प्रकाश वहां तक नहीं पहुंच सकता। समुद्रों में जो पौधे हैं वे बड़े निम्न कोटि के होते हैं। पृथ्वी पर बीजों वाले जो पौधे आमतौर पर पाए जाते हैं, वे समुद्रों में नहीं होते। फर्न और मॉस भी समुद्रों में नहीं पाए जाते। समुद्रों में पाए जाने वाले पौधे, सब के सब शैवाल वर्ग के होते हैं और यह वर्ग प्रकृति में पाए जाने वाले पौधों में सबसे निचले दर्जे का वर्ग है। हम पहले ही यह कह चुके हैं कि प्लवकों में डायाटोम और फ्लैजलेट बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। समुद्र में खर पतवार के ज़ो समूह पाये जाते हैं वे बेंथोस में पाए जाने वाले होते हैं। तटीय समुद्रों में वे वैसे ही उगते हैं जैसे पृथ्वी पर बड़े बड़े खेतों में घास उगती है। यह खर पतवार सैकड़ों किलोमीटर तक फैली हुई होती है। हरी शैवाल (क्लोरोफाइसी) समुद्र में कम ही मिलती है। लेकिन लाल शैवाल (रोडोफाइसी) और भूरी शैवाल (फ्योफाइसी) आमतौर पर पाई जाती है। लाल और भूरी शैवाल हमारे तटीय समुद्रों में बहुत मिलती है ओर उसके कुछ वर्ग तो अत्यधिक आर्थिक महत्त्व के हैं। यदि आप चट्टानों भरे तटों पर जाएं तो आपको विश्वास हो जाएगा कि समुद्र में फैली हुई घास के मैदान कितने सुंदर लगते हैं। जब समुद्र का जल शांत होता है तो वे उसमें उठने वाली छोटी छोटी लहरों के साथ वैसे ही लहराते हैं जैसे कि हवा चलने पर धान के खेत लहराते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन समुद्री खर पतवार बहुत ही नर्म होती है और लहरों और ज्वार भाटे के आगे टिक नहीं सकती। जब समुद्र में तूफान आता है तो यह खर पतवार बहुत बड़ी मात्रा में तट पर आ जाती है। यदि आप इस खर पतवार के किसी गुच्छे को कांच के बड़े बर्तन में रख कर देखें तो पता चलेगा कि उसमें नाना प्रकार के करोड़ों छोटे छोटे जीव होते हैं। इस खर पतवार में परूषकवची

(क्रस्टेशिया), मोलस्क (मृदुकवची), मछलियां और बहुत से अन्य प्रकार के जीव आश्रय लेते हैं। वे न केवल शैवाल को अपना भोजन बनाते हैं बल्कि छिपे रहकर अपने आप को सुरक्षित भी रखते हैं। बड़ी बड़ी मछलियां और दरियाई घोड़े भी चरने के लिए शैवाल भरे इन क्षेत्रों में आते हैं। मानव शैवाल इकट्ठी करके उससे कई काम लेता है तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों और कई अन्य स्थानों पर समुद्री खर पतवार को उबाल कर खाया जाता है। इसका दलिया बड़ा स्वादिष्ट होता है। अगर, चीनी घास और अन्य औषधियों और खाद्य पदार्थों में भी इस शैवाल का प्रयोग होता है। फोटोप्लैंक्टन की तुलना में समुद्री खर पतवार की मात्रा लगभग नगण्य है। लेकिन बराबर बदलते रहने वाले तटीय जल में इस खर पतवार के कारण समुद्र का परिवेश नाना प्रकार के जीवों के भोजन का माध्यम बनता है।

समुद्र तल पर जो जीव पाये जाते हैं उनका बड़ा महत्त्व है। ये न केवल संकरे कोंटीनेंटल शेल्फों बल्कि सारे समुद्र तल पर पाए जाते हैं। जैसा कि हम कह ही चुके हैं, समुद्र तल पृथ्वी की तुलना में तीन गुना है। इस कारण उसके तल पर पाए जाने वाले जीवों की मात्रा बहुत अधिक है। समुद्र तल पर और अत्यंत गहरे समुद्र में भी जीव हैं इसका प्रमाण हाल ही में उस समय मिला जब मैरियाना ट्रेंच से, जो लगभग ग्यारह किलोमीटर गहरी है, जीवों के नमूने इकट्ठे किए गए।

नितलीय जीव पूर्णतया स्थावर होते हैं, क्योंकि वे निश्चित स्थानों पर ही रहते हैं। लेकिन कई बार थोड़ी थोड़ी दूर तक चले भी जाते हैं। ये स्थावर जीव पृथ्वी पर पाए जाने वाले उन जीवों से बहुत भिन्न हैं जिन्हें हम जानते हैं। वे जीवों जैसे लगते भी नहीं हैं लेकिन यह प्रमाणित हो चुका है कि वे होते तो जीव ही हैं। ऐसे स्थावर जीवों के उदाहरण हैं—प्रवाल (मूंगा), समुद्री लिल्ली, शुक्ति या सीप, मसल और बार्नेकल या खंडावल। स्पंज और एनीमोन (चित्र 21) जैसे कुछ जीव एक स्थान से उखड़ कर दूसरे स्थान पर चिपक जाते हैं। इस प्रकार के चलने वाले नितलीय जीवों की संख्या बहुत अधिक है और बिना रीढ़ की हड्डी वाले फाइला नामक जीव भी इस वर्ग में आते हैं। यद्यपि अधिकतर मामलों में इनका ढांचा वैसा ही रहता है। उनमें से कई में परिवर्तन भी हो जाता है। वह इस प्रकार कि वे अपने को समुद्र तल पर जीवित रहने योग्य बना लेते हैं। चलने वाले नितलीय जीवों में चपटे कीड़े, नेमर्टीन, कई प्रकार के एनेलिड कीड़े, एनीनोडर्स (स्टारफिश), ब्रिटलस्टार, समुद्री कुकुम्बर, अर्चिन आदि), केकड़ों, लोबस्टर और प्रोन जैसे



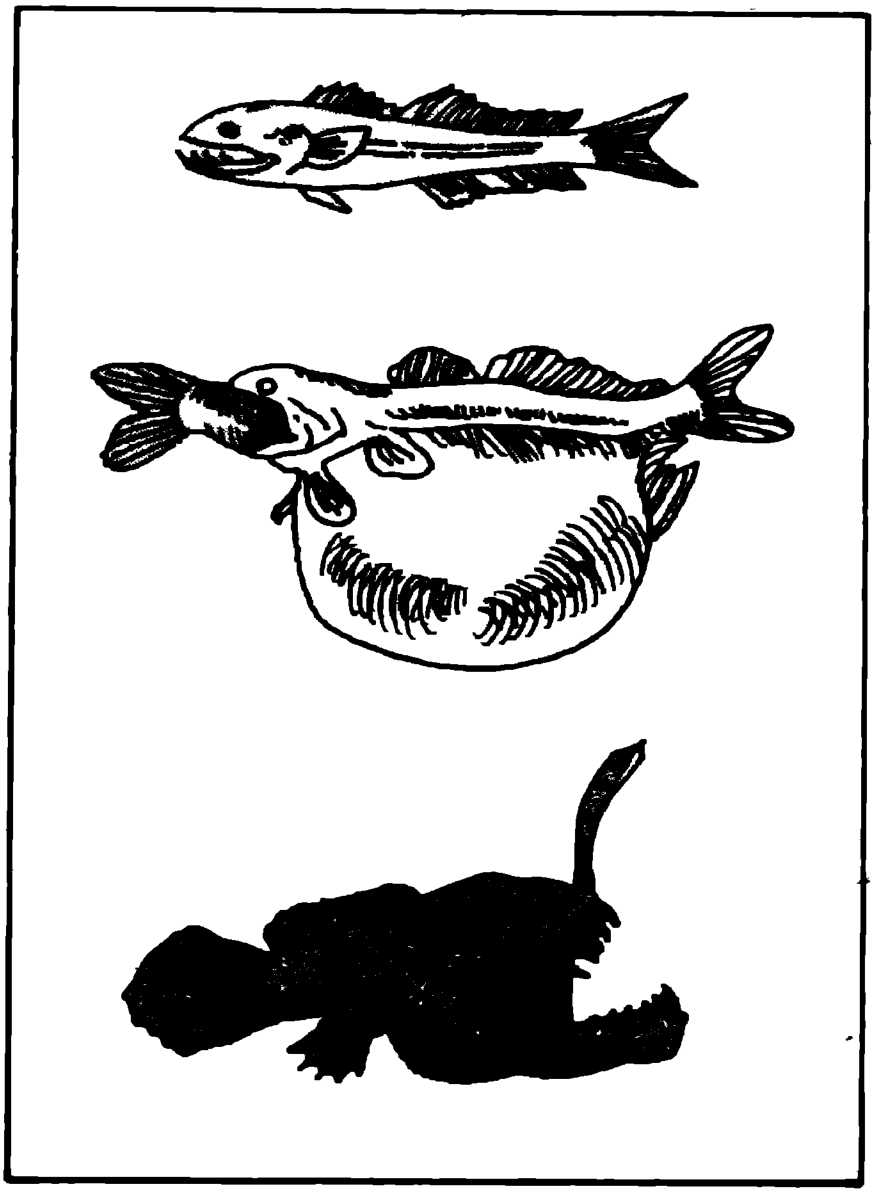
चित्र 21 : समुद्री एनीमोन दूषित मांसाहार है।

क्रस्टेशियन, गैस्ट्रोपोड बाइवाल्व, कई प्रकार की मछलियां और बहुत से अन्य जीव आते हैं (चित्र 22)।

हम देख यह देख चुके हैं कि प्लवक जीव समुद्री जल के संचलन पर निर्भर करते हैं। उस जल के साथ ही वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हैं। सच तो यह है कि नितलीय जीवों के जीवित रहने के लिए जल का एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना बहुत आवश्यक है। इन जीवों को आसपास के जल से न केवल भोजन के कण मिलते हैं बल्कि आक्सीजन भी प्राप्त होती है। वे अपने शरीर का मल भी इसी जल में त्यागते हैं। यदि आसपास के जल में कोई गति न हो तो इन जीवों का सांस रुक जाएगा और वे बहुत बड़ी संख्या में मरने लगेंगे। कोंटीनेंटल शेल्फ पर जो नितलीय जीव मिलते हैं उनके लिए भोजन की कमी नहीं होती क्योंकि उस क्षेत्र में उनके खाने योग्य पदार्थ बड़ी मात्रा में उपलब्ध होते हैं। लेकिन जो जीव बहुत गहराई में रहते हैं, उन्हें अपने भोजन के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उनका भोजन संयोगवश उन्हें मिल जाता है या ऊपर के जल से नीचे की ओर पहुंच जाता है। वे जहां पर रहते हैं वहां न तो प्रकाश होता है और न

जल में कोई ऊष्णता। इस कारण मछलियों और अन्य जीवों के शरीर इस प्रकार के बन गए हैं कि वे उसी परिवेश में उपलब्ध भोजन खाकर जीवित रहते हैं।

समुद्र तल पर जो अन्य जीव पाए जाते हैं उनमें एक महत्त्वपूर्ण वर्ग कीटाणुओं का है। पृथ्वी के समान समुद्र में भी कीटाणु सभी जगह फैले हुए हैं, लेकिन उनकी बहुत बड़ी संख्या समुद्र तल पर ही होती है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। समुद्र तल पर सारा कूड़ा करकट इकट्ठा हो जाता है बिल्कुल वैसे ही जैसे कि पृथ्वी से नदियों के जल के माध्यम से आने वाली हर चीज समुद्र में आ गिरती है। समुद्र तल पर इकट्ठे होने वाले पदार्थों में कार्बनिक और अकार्बनिक, दोनों प्रकार के पदार्थ होते हैं। कार्बनिक पदार्थ मृत्यु को प्राप्त होकर कार्बनिक रसायनों और खनिजों का रूप ले लेते हैं और वे फिर जीवन की प्रक्रियाओं के लिए उपलब्ध होते हैं। "अपघटन की प्रक्रिया में लगे हुए 'मजदूर' तो समुद्रों पर पाए जाने वाले कीटाणु

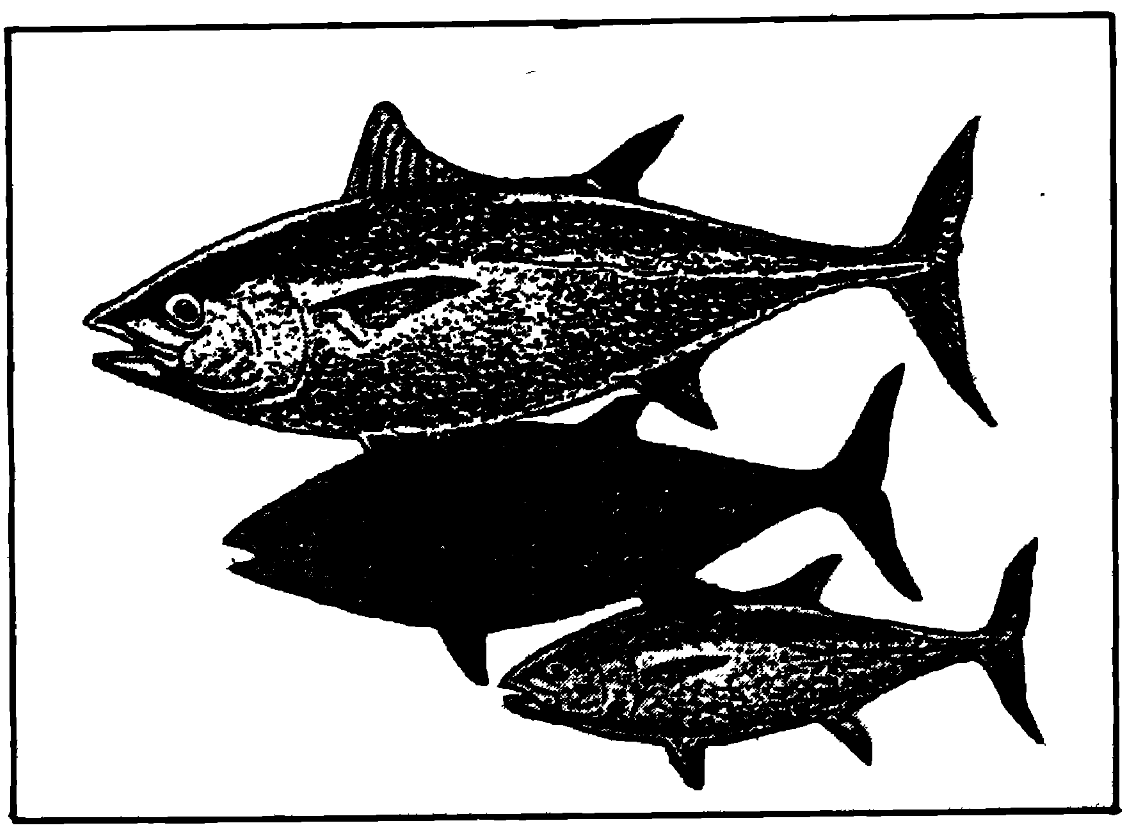


चित्र 22 : गहरे समुद्र की मछलियां - ऊपर और बीच में स्वालोअर मछली। इस मछली का आमाशय बहुत फूल जाता है और इस कारण यह अपने से पांच गुना आकार के जीव को निगल सकती है। गहरे समुद्र में एक बार ऐसा भोजन करनें के बाद कई महीने तक फिर भोजन नहीं मिलता। नीचे एंग्लर मछली है। इसके सिर पर जो मांसपेशियां हैं वे चमकती रहती हैं। उसी प्रकाश से आकृष्ट होकर छोटे छोटे जीव इसकी ओर आते हैं और वह उन्हें अपने दांतों में दबा लेती है।

हैं। वे समुद्र में सभी स्तरों पर मिलते हैं। और समुद्र तल पर जो कीचड़ होता है उसके प्रत्येक कण में चार अरब बीस करोड़ सैल होते हैं। कई कीटाणु तो समुद्र तल के 42 मीटर नीचे भी पाए गए हैं। समुद्र के अधिकतर कीटाणु हैटेरोट्रोपिक होते हैं अर्थात् वे कार्बनिक सम्मिश्रणों के साथ आक्सीजन के मिलने से अपनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि वे परजीवियों के समान रहते हैं। फोटोप्लैंक्टन और अन्य शैवाल कार्बन डाइआक्साइड, नाइट्रोजन, फास्फेट आदि जैसे अकार्बनिक पदार्थों से कार्बनिक पदार्थ बनाते हैं। लंबी अवधि में ये जीव वैसे ही और उसी दर पर मरते हैं जिस पर वे जन्म लेते हैं। यदि कोई अंतवर्ती घटक हो तो ये पदार्थ फिर अपने स्थूल रूप में आ जाते हैं। इस प्रकार के कीटाणु कार्बनिक पदार्थ को खनिज पदार्थों में परिवर्तित करके अपने भोजन की प्रक्रिया को स्थायी बना देते हैं" (यासो, पृष्ठ 139)।

नैक्टोन (तरणक)

तरणक नाम के जीव एक महाद्वीप के तट से लेकर दूसरे महाद्वीप तक और ऊपर से लेकर समुद्र तल तक तैरते रहते हैं। जैसा कि युगों से यह सर्वविदित होता है, मछलियां इस असीम परिवेश का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। अब तक 25,000 से अधिक प्रकार की मछलियों का पता चला है और अन्य वर्गों का अभी तक पता नहीं है। इनमें मछलियों के वे सभी प्रकार आ जाते हैं जिन्हें मानव खाने के लिए पकड़ता है जैसे—सार्डीन, मैकरल, पोम्फ्रे, ट्यूना (चित्र 23), शार्क, रे



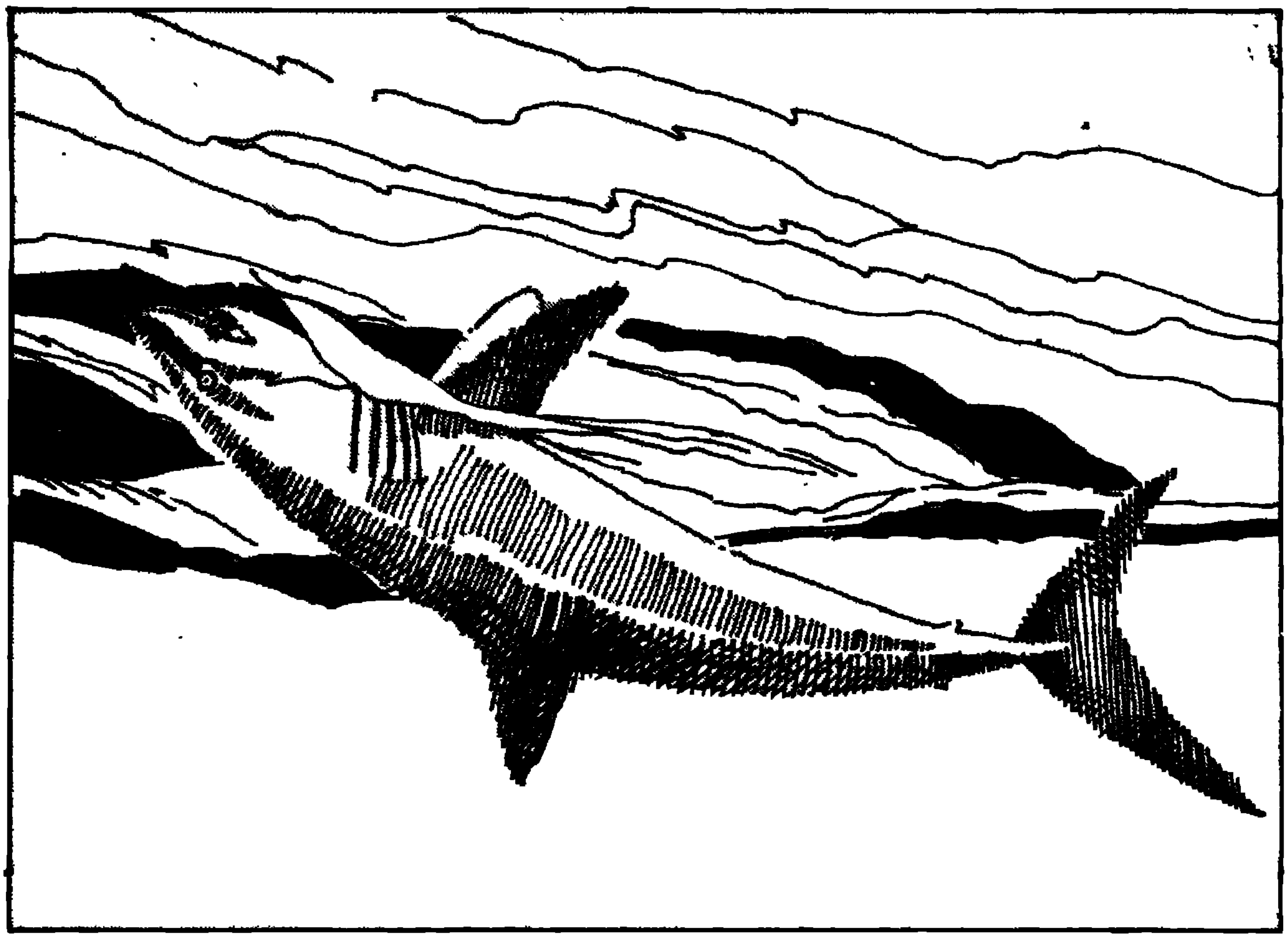
चित्र 23 : नीले पंखों वाली ट्यूना।

और अन्य असंख्य मछलियां। तरणक वर्ग में दूध पिलाने वाले सभी समुद्री जीव भी आ जाते हैं। इनमें व्हेल और डोल्फिन (सूंस), क्रस्टेशियन, मोलस्क और कई अन्य बिना मेरुदंड वाले जीव। यद्यपि सारे समुद्र एक जैसे लगते हैं और एक दूसरे से मिले हुए हैं, उनके जल के क्षेत्रों और तहों में काफी अंतर है। भौतिकी-रासायनिक अंतरों के कारण तरणक जीव सीमित रहते हैं। और फिर, ज्यों ज्यों समुद्र में नीचे जाएं तो जल का दबाव बढ़ने लगता है इसलिए समुद्र के बीच और नीचे रहने वाली मछलियां वेलापवर्ती (पेलेजिक) मछलियों से भिन्न होती हैं, जो खुले समुद्र में पायी जाती हैं।

तरणक जीव कहां कहां होंगे, यह कुछ भौगोलिक तत्वों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसी मछलियां और अन्य जीव हैं जो केवल ऊष्ण प्रदेशीय समुद्रों में ही पाए जाते हैं और कुछ ऐसे हैं जो केवल उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के पास ही मिलते हैं। इन दोनों के बीच अन्य प्रकार के जीव भी हैं, जो इन दो क्षेत्रों के बीच दिखाई पड़ते हैं। परंतु इन क्षेत्रों में जल इधर से उधर आता जाता रहता है और इस कारण ये जीव भी अपना स्थान बदलते रहते हैं। सच तो यह है कि समुद्र में तापमान में उतना परिवर्तन नहीं होता, जितना कि पृथ्वी पर शीतोष्ण क्षेत्रों के जीवों को चौबीस घंटों में देखना पड़ता है। लेकिन विशाल समुद्रों में बाहरी तत्व सदा संतुलित और स्थिर रहते हैं और इसलिए तापमान और नमक की मात्रा में परिवर्तन को सहने की शक्ति समुद्री जीवों में अत्यंत सीमित होती है।

तरणक और प्लवक जीवों में विभेद करना आसान नहीं है। उदाहरण के लिए, मछलियों के बच्चे प्लवक होते हैं और बड़े होकर तरणक बन जाते हैं। संक्रमण की अवस्था में इन्हें इन दोनों वर्गों में रखा जा सकता है। प्लवक के रूप में जीवन के दौरान तरणक जीवन, जो आगे चल कर आएगा, किसी दूसरे स्थान पर प्रारंभ हो सकता है। इस प्रक्रिया के कारण ये जीव नए क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं और कई बार विश्व के सभी क्षेत्रों में पहुंच जाते हैं। जब ये वयस्क हो जाते हैं तो भोजन की खोज में या अपनी नस्ल बढ़ाने के लिए दूसरे क्षेत्रों में चल देते हैं। तरणक और प्लवक के बीच विभेद यदि, संदेहास्पद है तो वैसा ही भेद नितलीय जीवों और प्लवकों के बीच है। अधिकतर प्लवक जीव वयस्क होने पर समुद्र के तल पर जाकर बैठ जाते हैं। लेकिन जब तक ये प्लवक की श्रेणी में रहते हैं तो नए क्षेत्रों में पहुंच सकते हैं और उन्हें अपनी ही नस्ल के दूसरे जीवों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती।

समुद्री मछलियों में कुछ तो हड्डी वाली होती हैं और कुछ कुरकुरी हड्डी



चित्र 24 : सबसे खतरनाक शार्क मछली खुले समुद्र में रहती है। यद्यपि यह सामान्य तौर पर अकेले ही शिकार करती है, लेकिन रक्त की गंध से ही यह और इसके साथी शार्क एकत्र हो जाते हैं।

वाली। पहले वर्ग में जो मछलियां आती हैं, उनका आर्थिक महत्त्व बहुत है। दूसरे वर्ग में शार्क (चित्र 24), रे और काइमेरा वर्ग की मछलियां आती हैं। यहां पर हम स्थानाभाव के कारण उनके शरीरों के ढांचे के अंतर का ब्यौरा नहीं दे सकते। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि अंतर न केवल उनके ढांचे में होता है, बल्कि उनके शरीर की क्रियाओं, बच्चे देने के स्वभाव और अन्य तत्वों में भी होता है। कुरकुरी हड्डी वाली मछलियां सबसे बड़े आकार की मछलियां होती हैं जो समुद्र में पाई जाती हैं। और वे तैरने में भी बहुत अधिक सक्रिय होती हैं। ये मछलियां शिकार करने में सिद्धहस्त होती हैं और बहुधा अन्य जीवों और मानवों पर भी आक्रमण कर देती हैं। इनमें से बहुत सी जरायुज (अपने गर्भाशय में बच्चे को धारण करने वाली) होती हैं। यद्यपि शार्क और रे मछलियों का मांस खाने में अच्छा नहीं होता लेकिन उनसे तेल प्राप्त होता है जो बहुत सी औषधियों के निर्माण और उद्योगों में काम आता है।

टीलीओस्ट (हड्डी वाली मछलियां) समुद्रों की स्वामिनी कही जा सकती हैं और उनमें से अधिकतर सच्चे अर्थों में तरणक वर्ग में आती हैं। उनका आकार,

ढांचा, जीवन शैली और प्रजनन के स्वभाव में इतनी अधिक विविधता है कि उसका वर्णन यहां संक्षेप में भी करना संभव नहीं। जो मछलियां खाद्य होती हैं, जैसे कि सार्डीन, मैकेरल, पोम्फ्रे, बोम्बे डक, एनकोवी, स्कोम्ब्रोइड, व्हाइट बैली, कार्प आदि सभी टीलीओस्ट वर्ग में आती हैं। फ्लाइंग मछलियां, दरयाई घोड़े, पाइप फिश, बटरफ्लाई फिश, समुद्र तल पर रहने वाली ब्लाइंड फिश आदि भी इसी वर्ग में आती हैं। ट्यूना, सामन और ईल नाम की मछलियों का विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि वे सभी घुमंतू होती हैं और सैकड़ों मील तक चली जाती हैं। ट्यूना मछली 60 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से तैरती है और सदा तैरती ही रहती है। अनुमान लगाया गया है कि दस वर्ष की ट्यूना मछली अपने जीवनकाल में दस लाख किलोमीटर की दूरी तय कर लेती है। यह देखा गया है कि फ्लाइंग फिश नाम की मछली लगभग **50** किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से तैरती है। लेकिन इस वर्ग की मछली का आवागमन सीमित होता है। मैकरिल नाम की मछली भी बड़े बड़े झुंडों में दूर तक जाती है।

सामन और ईल मछली का प्रवास विशेष रुचि का विषय है क्योंकि यह ऋतु बदलने के साथ और नियमित रूप से होता रहता है। सामन मछलियां समुद्र में अपने स्थान से कुछ दूर नदियों में चली जाती हैं जहां जाकर वे बच्चे देती हैं। जो बच्चे नदियों में उत्पन्न होते हैं, वे फिर समुद्र में आ जाते हैं। उसके बाद वे फिर नदियों में लौट आती हैं और वहां पर बच्चे देती हैं। इस प्रकार का प्रवास प्रकृति का चमत्कार है क्योंकि मछलियां उन्हीं नदियों में लौटती हैं जहां से वे समुद्र



चित्र 25 : कमानीदार सर्पमीन।

में गई होती हैं। प्रवास करने वाली अन्य मछलियों में ईल नाम की मछली भी है। यह मछली देखने में सांप जैसी लगती है (चित्र 25) और कुछ समय समुद्र में और बाकी समय नदियों में बिताती है। ये अपने बच्चे समुद्र में देती हैं जो काफी लंबे समय तक प्लवकों के रूप में रहते हैं। जब ये बच्चे नदियों की ओर जाते हुए समुद्र तट के पास पहुंचते हैं तो बड़े हो जाते हैं। मछलियों का इस प्रकार का प्रवास पक्षियों के प्रवास जैसा है।

तरणक मछलियां, विशेषरूप से हड्डियों वाली मछलियां, समुद्री मछलियों का मुख्य अंग हैं। विकसित देशों में मछली उद्योग बड़ा सुव्यवस्थित है जिससे उन राष्ट्रों को प्रोटीन से भरा पौष्टिक भोजन उपलब्ध होता है। लेकिन भारत में मत्स्यपालन का विकास अभी तक नहीं हो पाया है।

जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, तरणक जीव सारे समुद्रों में सभी स्थानों पर मिलते हैं। लेकिन ये कहां पर मिलेंगे और किस मात्रा में उपलब्ध होंगे इसमें बहुत सी भिन्नता है। अधिकतर तरणक जीव जल की ऊपरी तह में मिलते हैं, विशेषरूप से नेरीटांचली क्षेत्र में। ऐसा होना स्वाभाविक ही है क्योंकि यही क्षेत्र है जिसमें फाइटोप्लैंक्टन और जूप्लैंक्टन बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। और फिर इस क्षेत्र में तापमान, नमक की मात्रा, दबाव और अन्य बाहरी तत्व सीमांतक होते हैं। लेकिन जल के बीच और तल के पास जो नैरेटिक मछलियां उपलब्ध हैं उन्हें देख कर एक नयी तस्वीर उभरती है। पांच सौ मीटर के नीचे प्रकाश बिल्कुल नहीं होता और प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया होती ही नहीं है। इसका परिणाम यह है कि वहां पर जूप्लैंक्टन बहुत कम होता है। सच तो यह है कि प्लैंक्टन हों या कि नैक्टोन (अर्थात् प्लवक और तरणक), जहां प्रकाश नहीं होता, वहां उन्हें भोजन के उन कणों पर निर्भर करना पड़ता है जो समुद्र की सतह से उसके तल की ओर गिरते रहते हैं या उन कार्बनिक तत्वों पर जो सूर्य के प्रकाश वाले जल के क्षेत्र से समुद्र के तल की ओर जाते हैं। प्रकाश न होने के कारण ये जीव अपने भोजन को देख नहीं पाते और उसे इकट्ठा नहीं कर सकते। सच तो यह है कि भोजन पाने का कोई आश्वासन नहीं होता और जीवों को भोजन के उन कणों पर निर्भर रहना पड़ता है जो जल में ही ऊपर से नीचे की ओर आते रहते हैं। यही कारण है कि समुद्र की गहराई में रहने वाले तरणक जीवों के शरीर के ढांचे में कई परिवर्तन हो गए हैं। सामान्यतया वे देख नहीं पाते और हिलने डुलने की कठिनाई का अनुभव करते हैं। उनके शरीर में प्रकृति ने ऐसे उपकरण लगा दिए हैं कि वे अपना भोजन इकट्ठा कर लेते हैं।

तरणक जीवों को जीवित रहने के लिए अपार कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। खुले समुद्र में या तो कोई जीव दूसरे को खा जाएगा या वह जीव उसे खा लेगा। इस कारण न केवल पूर्ण रूप से विकसित बल्कि अविकसित समुद्री जीवों की संख्या भी लगातार घटती रहती है। समुद्र में नाना प्रकार के शिकारी जीव होते हैं। यदि समुद्री जीवों की संख्या स्थिर रहती है तो उसका कारण एक ही है और वह यह कि उनकी उत्पत्ति बहुत बड़ी संख्या में होती है। उदाहरण के लिए कोड जाति की एक मछली एक मौसम में पचास लाख अंडे देती है। लेकिन हम देखते हैं कि इस मछली की संख्या में प्रति वर्ष वृद्धि नहीं होती, यह इस बात का सूचक है कि जो पचास लाख अंडे दिए गए उनमें से कुछ ही बड़े होकर मछली का रूप धारण करते हैं और फिर अंडे देते हैं। जब कोई किसान गेहूं उगाता है तो इसलिए नहीं कि उसे अगले मौसम के लिए गेहूं का बीज प्राप्त हो जाय। समुद्र की जीवन व्यवस्था भी किसान जैसी ही है। असंख्य जातियों के जीव बहुत बड़ी संख्या में बच्चे देते हैं। और इसी कारण इस जटिल परिवेश में सभी प्रकार के जीव बने रहते हैं।

मछलियों के अतिरिक्त अन्य तरणक जीव भी हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग स्क्विड नाम के जीवों का है। ये तेजी से चल सकने वाले मोलस्क होते हैं जिनकी आंखें होती हैं और दस लंबी भुजाएं। उन पर अपने शिकार को पकड़ने के लिए सकर जैसे अंग होते हैं। तरणक जीवों में क्रस्टेशियन वर्ग भी है जो बिना मेरुदंड वाले जीवों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। तरणक वर्ग में प्रोन, मिसिड, क्रिल और कई अन्य क्रस्टेशियन बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। इनमें से बहुत से भली भांति तैर लेते हैं और अत्यधिक गहरे जल में भी मिलते हैं।

कई मेरुदंड वाले जीव भी तरणकों के रूप में पाए जाते हैं। साइक्लोस्टोन (हैग फिश और लैम्प्रे) मेरुदंड वाले जीवों में सबसे निचली श्रेणी में आते हैं। ये अटलांटिक और प्रशांत समुद्रों में बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। एक अर्थ में तो ये परजीवी हैं क्योंकि ये अन्य मेरुदंड वाले जीवों, विशेषरूप से मछलियों के मांस और रक्त पर जीते हैं। ऊंची श्रेणी के मेरुदंड वाले जीवों में समुद्री कछुए और सांपों जैसे रेंगने वाले जीव हैं। ये ऊष्ण प्रदेशीय और अन्य समुद्रों में भी मिलते हैं। ये भली भांति तैर सकते हैं और समुद्र की सतह के समीप रहते हैं जिससे कि वायुमंडल में सांस ले सकें। समुद्री कछुए अंडे देने और उन्हें सेने के लिए तटों पर आते हैं। समुद्री सांपों की पूंछ चपटी होती है और ये अत्यंत विषैले होते हैं। ये बच्चे देते हैं और उनका सारा जीवन समुद्र में ही बीत जाता है। सांप

और कछुए सच्चे अर्थों में तरणक जीव हैं क्योंकि ये तैरते भी बहुत अच्छे हैं और अन्य जीवों का शिकार भी करते हैं।

अन्य समुद्री जीव

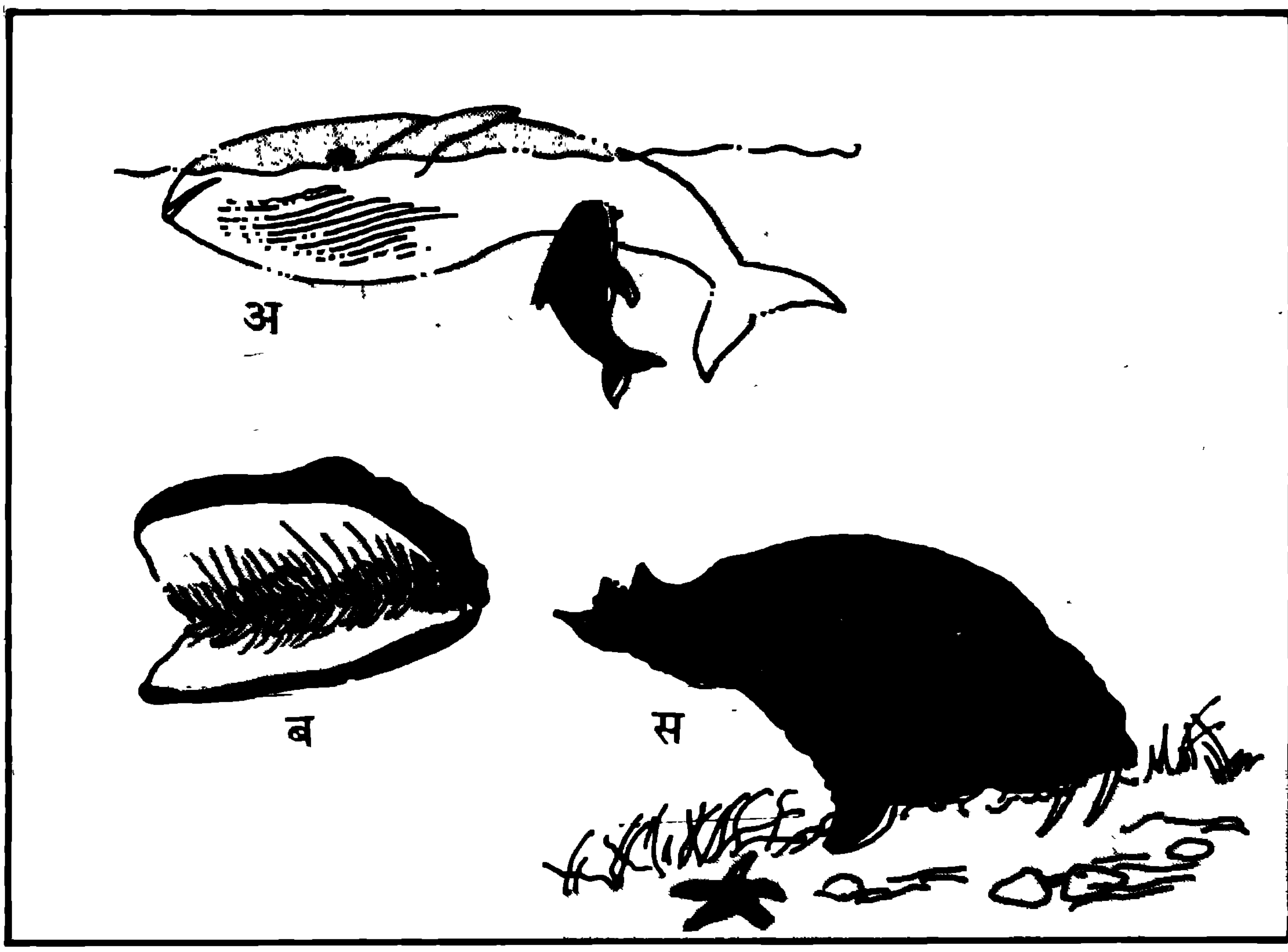
पक्षियों की कुछ ऐसी जातियां हैं जिन्होंने अपने को समुद्री जीवन के अनुकूल बना लिया है। वे जल में तैरते रहते हैं और वहीं दूसरे जीवों का शिकार करते हैं। उन्हें उनका भोजन समुद्र से ही प्राप्त होता है। कुछ ऐसे पक्षी भी हैं जो सामान्यतया पृथ्वी पर रहते हैं लेकिन भोजन के लिए समुद्र पर निर्भर करते हैं। लेकिन जहां तक अपनी नस्ल बढ़ाने का संबंध है, सभी पक्षी पृथ्वी पर ही अंडे देते हैं। सारे पक्षी शाम को उड़कर पृथ्वी पर पहुंच जाते हैं और इसलिए सभी समुद्री पक्षियों को नैरेटिक जाति का कहा जाता है।

समुद्र के स्तनपायी जीव मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांटे जाते हैं—**सिटेसियाई, साइलेरियन** और **कार्नीवोरा** (मांसाहारी)। सारे स्तनपायी जीव पृथ्वी पर ही प्रारंभ हुए लेकिन उन्होंने बाद में अपने को समुद्र में जीवन के अनुकूल ढाल लिया। अब



चित्र 26 : एक भूखी और हंता व्हेल पानी से बाहर आती हुई।

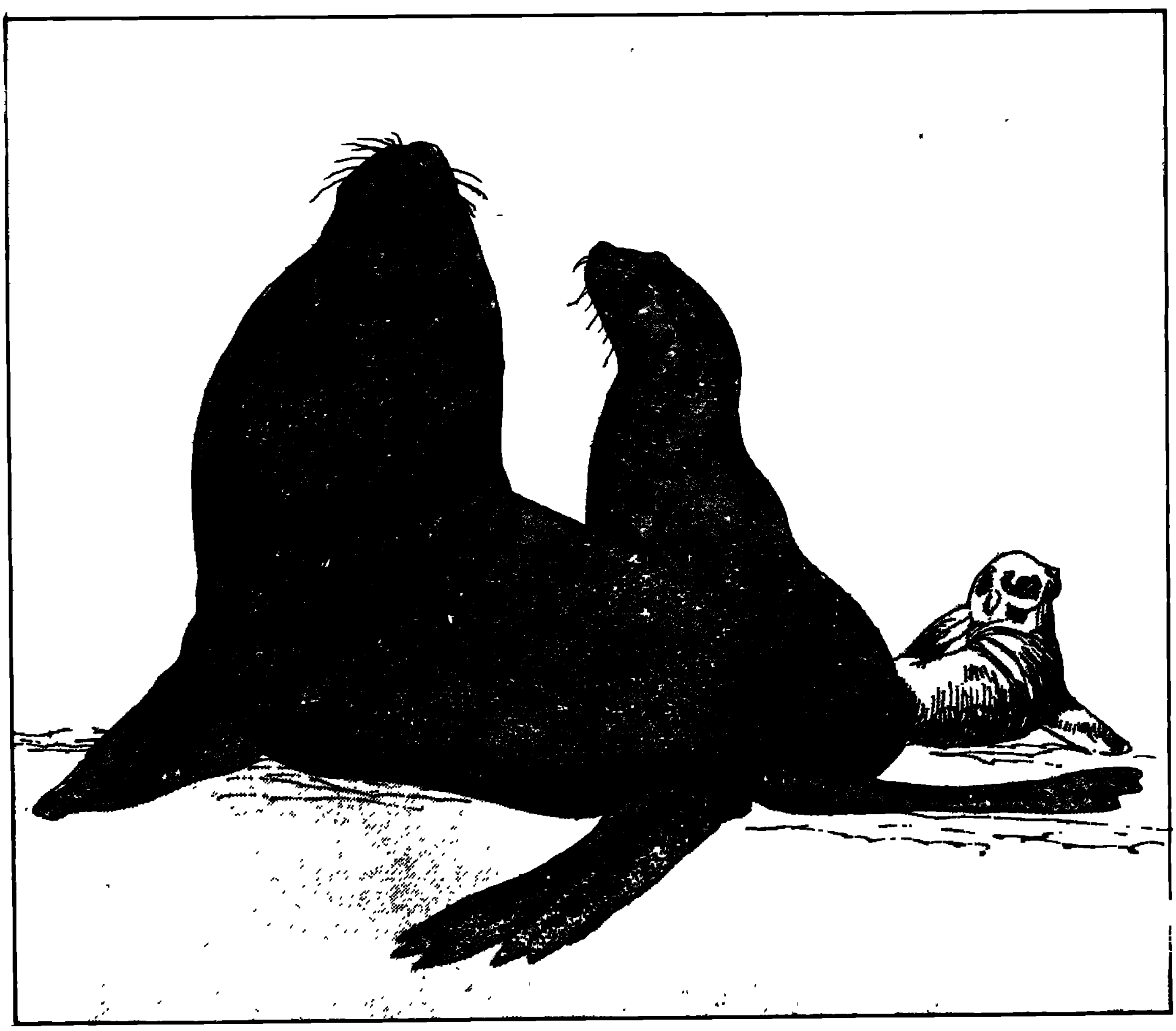
वे ऐसी स्थिति में पहुंच गए हैं कि यद्यपि वायुमंडल में सांस लेते हैं, लेकिन यदि वे पृथ्वी पर आ जायें तो वहां जीवित नहीं रह सकते। सिटेसियाई वर्ग में व्हेल, पॉरपॉयज और डालफिन नाम के जीव हैं, जो ऊष्ण प्रदेशीय और दूसरे समुद्रों में पाये जाने वाले स्तनपायी जीवों में आते हैं। व्हेल सबसे बड़े आकार का जीव है (चित्र 26) जो पचास मीटर तक लंबा और पचास टन तक भारी हो सकता है। व्हेल मछलियां दो प्रकार की होती हैं। एक तो दांत वाली और दूसरी बिना दांत की। दांत वाली व्हेल अपने शिकार को दांतों में पकड़ लेती है लेकिन दूसरी मछली के जबड़ों में दांतों के बजाय ऊपर और नीचे, दोनों जबड़ों में जालीदार चादर सी लटकी रहती है (चित्र 27 ब)। दूसरे प्रकार की व्हेल तैरते हुए अपना मुंह खुला रखती है और समुद्र के जल से छोटे छोटे जीवों को उदरस्थ कर लेती है। कोपपोड, टैरोपोड, क्रिल और अन्य छोटे छोटे जीव व्हेल मछली का प्रिय भोजन हैं। दांतों वाली व्हेलों के उदाहरण हैं तटीय समुद्रों में पाए जाने वाले पॉरपॉयज और डालफिन। बड़े आकार की दांतों वाली व्हेल मछलियों में मोमीतिमी (वह व्हेल मछली जिसका शिकार उसकी चर्बी के लिए किया जाता है) और बोटल नूज व्हेल



चित्र 27 : (अ) व्हेल अपने बच्चों को दूध पिलाते हुए, (ब) दूसरी प्रकार की व्हेल के जबड़ों में लटकती हुई चादर, इसी के माध्यम से वह छोटे छोटे जीवों को खा लेती है। (स) वालरस अपने शिकार की खोज में बर्फ खोदते हुए।

होती हैं। ये सभी तैरने में बड़ी कुशल होती हैं। वे समुद्र में बहुत गहराई तक जाकर बड़े आकार के स्किवड नाम के जीव का शिकार करती हैं। व्हेल मछलियां समूहों में चलती हैं और दूसरी मछलियों का शिकार करती हैं। यद्यपि उनके पूर्वज पृथ्वी पर रहने वाले मेरुदंड वाले जीव थे और उनके खून में अभी तक गर्मी है, व्हेल मछलियां पूर्णतया समुद्री जीवन के अनुकूल बन गई हैं। वे अपने बच्चों को जन्म देती हैं और कुछ समय तक उन्हें दूध पिलाती हैं (चित्र 27 अ)। जन्म के समय व्हेल के बच्चे का आकार लंबाई में सात मीटर तक होता है और उसका वजन लगभग दो टन होता है। पांच छः महीने में ही उसका आकार दुगना और वजन दस गुना हो जाता है। व्हेल की बढ़त, अर्थात् उसके वजन में वृद्धि, तीस टन प्रतिवर्ष होती है और यह दो वर्ष में पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है।

साइरेनियन भी सच्चे अर्थों में जलीय जीव हैं। उनके शरीर का ढांचा और उनकी क्रियाएं जल के अनुकूल हैं। इनका मुख्य उदाहरण है समुद्री गाय। ये तटों के पास रहना पसंद करती हैं। इसके अतिरिक्त कई मांसाहारी समुद्री जीव हैं जो



चित्र 28 : सी लायन्स मिलनसार होते हैं, इन्हें पालतू बनाना तथा प्रशिक्षित करना आसान होता है।

पूरी तरह या आंशिक रूप से समुद्री जीवन के अनुकूल बन गए हैं। सच तो यह है कि वे तट पर या उसके आसपास रहते हैं। लेकिन वे छिछले जल में तैर सकते हैं और शिकार कर सकते हैं। ये समुद्र तल से या ध्रुवीय क्षेत्रों में क्लेम नाम के जीव को बर्फ से खोद कर निकाल लेते हैं। इस वर्ग के अन्य उदाहरण हैं वालरस (चित्र 27 स), सील, ओटर, सी लायन (चित्र 28) आदि। समुद्रों के अधिकतर मांसाहारी जीव ठंडे प्रदेशों में मिलते हैं। उनकी खाल और दांत बड़े महंगे बिकते हैं।

समुद्र में भोजन का चक्र

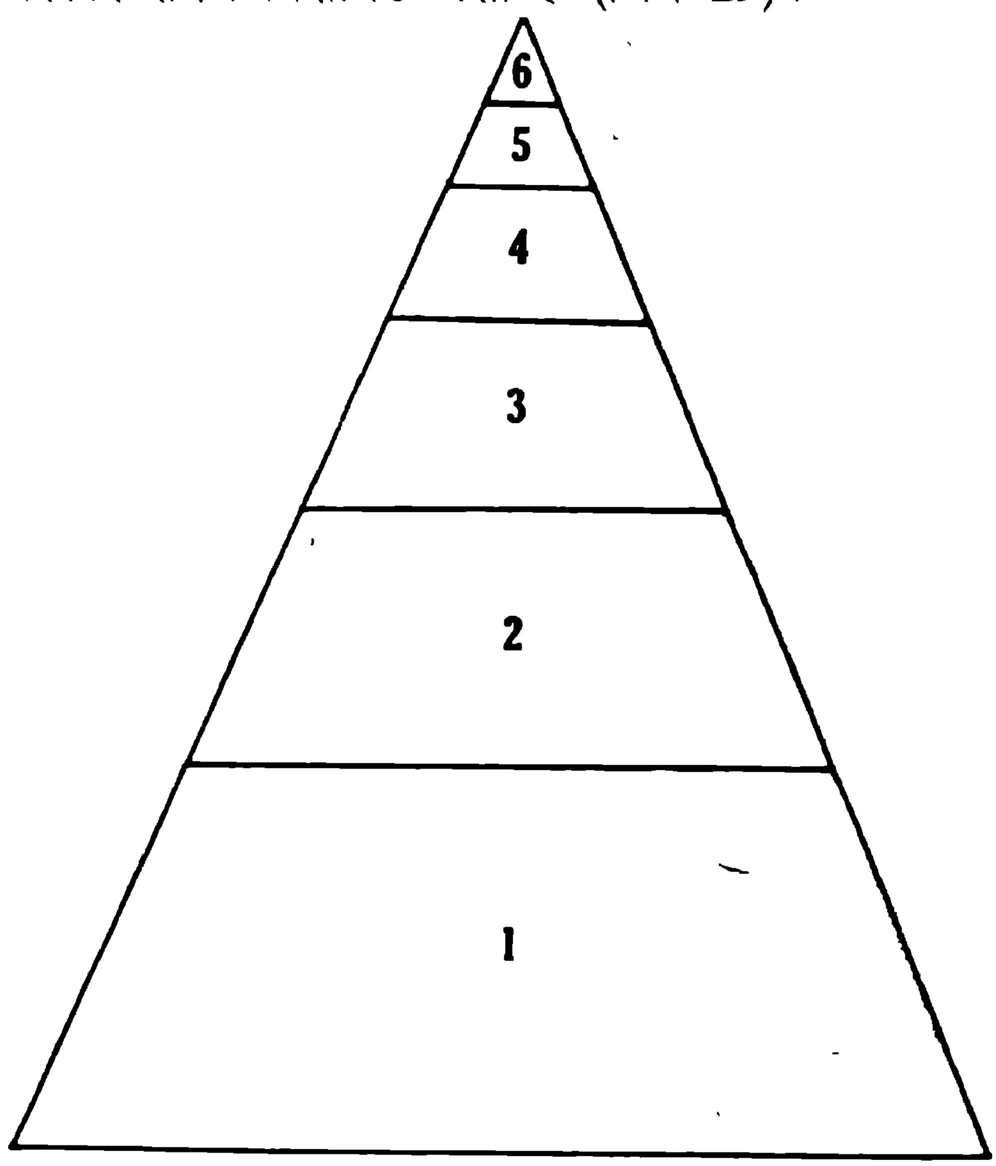
यहां पर समुद्र में पाए जाने वाले भोजन के चक्र का उल्लेख भी आवश्यक है। विशाल समुद्रों में जीवन की प्रक्रियाओं की एक लंबी शृंखला है जिसे भोजन के चक्र की संज्ञा दी गई है। हम जानते हैं कि पृथ्वी पर तो इस प्रक्रिया का मुख्य क्षेत्र कृषि है। खेती बाड़ी से ही मानव और उसके ढोरों के लिए भोजन प्राप्त होता है और उद्योगों के लिए कच्चा माल भी कृषि के माध्यम से ही पैदा किया जाता है। समुद्रों में छोटे छोटे पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रियाओं की प्राकृतिक प्रक्रिया ही करोड़ों टन खाद्य पदार्थों को जन्म देती है। इसमें शैवाल जैसे पौधों का भी योगदान रहता है। परंतु फाइटोप्लैंक्टन की अपार मात्रा जो खुले समुद्र में ही उत्पन्न होती है। छोटे आकार के जूप्लैंक्टन इन क्षुद्र पौधों को अपना भोजन बनाते हैं। इस कारण छोटे आकार के प्लवक जीव समुद्र की घास को खाने वाले जीव हैं। उन्हें बड़े आकार के प्लवक जीव और छोटी छोटी मछलियां खा जाती हैं। उन छोटी मछलियों को बड़े आकार के जीव, जिनमें समुद्र तल पर रहने वाली मछलियां भी शामिल हैं, खा जाते हैं। समुद्री जीवों का एक बहुत छोटा भाग है जिसे मानव, पक्षी या अन्य पृथ्वी पर रहने वाले जीव अपना भोजन बनाते हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि समुद्री भोजन की शृंखला में पहली कड़ी अरबों की संख्या में उत्पन्न होने वाले जीव हैं जो प्रति क्षण जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अरबों अन्य जीवों को दूसरे जीव खा जाते हैं या वे प्रतिकूल परिवेश में फंस जाते हैं। जो जीव जन्म लेता है वह कुछ समय बाद मरता भी है। उसका मृत शरीर गल सड़ भी जाता है। इस प्रकार के मृत शरीरों के कण जल में तैरते रहते हैं। लेकिन बहुत से समुद्र के तल पर जाकर बैठ जाते हैं। इस अपघटन के लिए असंख्य कीटाणु जिम्मेदार हैं। मृत जीवों के शरीर कार्बनिक या अकार्बनिक रूप धारण कर लेते हैं और कीटाणु उन्हें भोजन की शृंखला की अंतिम कड़ी के

रूप में परिवर्तित कर देते हैं।

हमने यह देखा है कि फाइटोप्लैंक्टन और अन्य पौधे भोजन की शृंखला का प्रारंभिक तत्व हैं। इन्हें जल में घुले हुए कार्बनिक और अकार्बनिक तत्वों से पौष्टिक तत्व प्राप्त होते हैं। इन तत्वों की कोई कमी नहीं है क्योंकि कीटाणु उन्हें बराबर इस परिवेश में लाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त असंख्य नदियों के जल और वर्षा के जल में घुले हुए पदार्थों की बहुत बड़ी मात्रा प्रतिदिन पृथ्वी से समुद्र में आती रहती है। जो पौष्टिक तत्व समुद्र के तल पर जाकर बैठ जाते हैं वे समुद्र के जल में चलने वाली धाराओं के कारण विस्थापित होते रहते हैं। और फिर, जल के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की जटिल व्यवस्था के कारण ये पौष्टिक तत्व एक स्थान में पहुंच जाते हैं। परिणाम यह होता है कि ये पदार्थ सारे समुद्र में फैल जाते हैं।

हमने भोजन चक्र की शृंखला के बारे में ऊपर जो कुछ कहा है उसे भोजन पिरामिड की संज्ञा भी दी गई है। इसका कारण यह है कि मात्रा की दृष्टि से सभी घटकों का परस्पर संबंध पिरामिड जैसा है (चित्र 29)।



चित्र 29 : भोजन शृंखला या पिरामिड। मानव के एक किलोग्राम वजन के लिए समुद्र में एक लाख किलोग्राम पौधे के ऊतक बनाने की आवश्यकता पड़ेगी।

समुद्र में पाये जाने वाले जीवों की विविधता और उनकी संख्या असीम है। प्रत्येक वर्ष जीवों की नयी जातियों और प्रजातियों तथा वर्गों का पता चलता है और उनका वर्णन किया जाता है। कोइलोकांथ नाम की एक दुर्लभ मछली के बारे में यह विश्वास था कि वह आज से पचास लाख वर्ष पहले लुप्त हो गई थी। लेकिन 1938 में दक्षिणी अफ्रीका के तट से इस प्रकार की दो मछलियां जीवित पकड़ी गईं। इस पर सारे वैज्ञानिक अचंभे में पड़ गए थे। समुद्र में क्या क्या छिपा है, इसके बारे में कल्पना ही की जा सकती है और संभव है कि उसके अंधकारमय तल से नए प्रकार के जीवों का पता चले। यह भी संभव है कि मानव समुद्री जीवों का सर्वेक्षण पूर्ण रूपेण करने में असफल ही रहे, क्योंकि उसकी पहुंच समुद्र की उन गहराइयों तक नहीं है, जहां सूर्य के प्रकाश का भी प्रवेश नहीं।

7

अंतर्जलीय खोज

समुद्र ने मानव को सदा आकृष्ट तो किया ही है, वह उसके लिए एक चुनौती भी बना रहा है। रेतीले तट पर शांत वातावरण में बैठा मानव समुद्र में नाचती लहरों को देखता है तो उसके दुखी मन को शांति प्राप्त होती है और सृजनात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरणा भी मिलती है। सभी युगों में सभी मानव समुद्रों की विशालता, उनकी रहस्यमयता और उनके जीवों की विविधता से अभिभूत रहे हैं। मानव सभ्यता ने सबसे पहले बड़ी बड़ी नदियों के तटों पर जन्म लिया। यदि ये सभ्यताएं स्थानीय रहीं तो स्वाभाविक ही था और वे कभी विश्वव्यापी नहीं हो पाई। टिग्रिस, फुरात, नील और सिंधु नदी जैसी महान नदियों के तटों पर जो सभ्यताएं और संस्कृतियां उभरीं वे समुद्र तट की ओर बढ़ीं और तटीय सभ्यताएं मानवीय कार्यकलाप की प्रमुख केंद्र बन गईं।

मानव ने समुद्र के आकर्षण और उसकी चुनौती का उत्तर बड़े सृजनात्मक ढंग से दिया। लेकिन जहां तक समुद्र और मानव के संबंधों का प्रश्न है, समुद्र ही मानव पर छाया रहा। इसका कारण यह है कि मानव समुद्र के छोर तक ही सीमित रहा। समुद्र के भीतर क्या है उसे मानव कुछ ही समय पहले जान पाया है और कुछ ही समय पहले वह समुद्र के अंतर्तम तक पहुंच पाया है। समुद्र मानव के लिए अजनबी ही रहा, क्योंकि मानव न तो समुद्र में सांस ले सकता है और न उसमें गहरा पैठ सकता है। लेकिन जब तक चुनौती रहेगी, मानव उसका सामना करने के लिए तैयार रहेगा। वह इसके भीतर तक भी पहुंच गया है।

प्रारंभ से ही समुद्र के अंदर क्या है, यह खोजने के लिए जो तरीके अपनाये

गये वे सफलता के सूचक नहीं थे। कुछ लोगों ने गोताखोरी में प्रवीणता प्राप्त कर ली और विशेषज्ञ गोताखार बिना किसी उपकरण के पचास मीटर नीचे तक जाने लगे। लेकिन ऐसे गोताखोर दो मिनट से ज्यादा जल में नहीं रह सकते थे और उन्हें सांस लेने के लिए बाहर आना पड़ता था। इस प्रकार गोताखोर न तो समुद्र में रह सकते थे और न वहां कोई काम कर सकते थे।

इसलिए प्रारंभ में मानव ने समुद्र के जल के नीचे पहुंचने के लिए लकड़ी के बक्से बनाए, जिनमें जल प्रविष्ट नहीं हो सकता था और जिनमें कांच की खिड़कियां लगी थीं। ऐसे बक्सों में जितनी हवा रहती थी उसमें मानव कई मिनट, बल्कि कई घंटे तक सांस ले सकता था। लेकिन ऐसे अधिकतर बक्से लकड़ी के बनते थे और अधिक गहराई तक पैठ नहीं सकते थे क्योंकि वे जल के वजन के नीचे पिचक जाया करते थे। कहते हैं कि अलेक्जेंडर महान ने जल के नीचे यात्रा करने का दुस्साहस किया था। उन्होंने बेलनाकार कक्ष-सा बनाया था जो जल के नीचे जा सकता था। उसमें बैठे बैठे वे दिन के प्रकाश में यह देख सकते थे कि जल में क्या है। कहते हैं कि उन्होंने भूमध्य सागर में ऐसी पनडुब्बी में कई बार यात्रा की। उन्हें इस प्रकार का शौक था और उस पनडुब्बी की कांच की खिड़कियों से उन्होंने जो समुद्री जीव देखे उनका वर्णन वे अपने पीछे छोड़ गए हैं। कहते हैं कि उन्होंने एक इतना बड़ा जीव देखा कि वह कई घंटे तक उस पनडुब्बी की खिड़की से गुजरता रहा। लेकिन अभी तक किसी और ने ऐसा जीव नहीं देखा है।

सत्रहवीं शताब्दी में हालैंड के एक इंजीनियर, कोरनीलियस ड्रेबल को इस प्रकार की पनडुब्बी बनाने का शौक चर्राया। उन्होंने 1620 में एक बेलनाकार पनडुब्बी बनायी जो जल में कुछ मीटर नीचे तक पहुंच सकती थी। लेकिन कुछ ही मिनट बाद उस पनडुब्बी को बाहर निकालना पड़ता था। यह पनडुब्बी पैडलों से जल में चलाई जा सकती थी। लेकिन यह कुछ ही दूर तक आगे की ओर जा सकती थी, नीचे की ओर नहीं। आजकल के हिसाब से तो ड्रेबल की पनडुब्बी एक खिलौना ही कही जा सकती है।

यह बात स्पष्ट हो गई कि जल के नीचे खोज का काम तभी किया जा सकता है जब मानव कुछ समय तक जल में रह सके और ऐसी पनडुब्बियों में जा सके जिन्हें आगे पीछे या ऊपर नीचे चलाया जा सके। इस प्रकार के प्रयत्नों का सामरिक महत्त्व भी था। इस बात की अनुभूति विशेष रूप से अमरीका के स्वतंत्रता संग्राम में हुई। अमरीका की नौसेना अभी प्रारंभिक अवस्था में थी और ब्रिटेन के भारी

जंगी जहाजों के साथ मुकाबला नहीं कर सकती थी। इसलिए अमरीकनों ने फैसला किया कि शत्रु के जहाजों पर जल के नीचे से आक्रमण करें तभी उनका मुकाबला किया जा सकता है। इसी कारण अमरीका ने सैनिक पनडुब्बियां बनायीं। इस पहलकदमी का उसे लाभ भी हुआ।

जॉन हालैंड ने 1900 में एक पनडुब्बी बनायी जिसे सबसे पहली सच्ची पनडुब्बी कहा जा सकता है। यह जल के अंदर और जल के बाहर, अर्थात् उसकी सतह पर, चल सकती थी। इसमें बैटरियां लगी थीं, जिनकी सहायता से इसे चलाया जा सकता था। लेकिन इसे अपनी बैटरियां फिर से चार्ज करने के लिए बार बार जल से निकालना पड़ता था। पहले विश्व युद्ध में जर्मनी ने पनडुब्बियां बनाने में बहुत प्रगति की। उनमें डीजल से चलने वाले इंजन लगे थे। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी जिसके कारण जल के अंदर चलना भी उतना ही आसान हो गया जितना कि जल के बाहर चलना। दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनों ने यू-बोट नाम की



चित्र 30 : संयुक्त राज्य अमरीका की नौसेना की पनडुब्बी 'नाटीलस' ने समुद्र की गहराइयों में मानव यात्रा को सहज बनाकर एक नये युग का निर्माण किया।

पनडुब्बियां बनायीं जिनके कारण मित्र राष्ट्रों के जहाजों के लिए बहुत बड़ा खतरा पैदा हो गया।

दूसरे विश्व युद्ध में समुद्रों पर प्रभुत्व जमाने के लिए विभिन्न देशों के बीच होड़ चली। यह विशेषरूप से जल के नीचे चलने वाली पनडुब्बियों के क्षेत्र में थी। सामान्य जहाजों के आकार की बड़ी बड़ी पनडुब्बियां बनायी गयीं जिनमें परमाणु ऊर्जा का प्रयोग किया गया। सन् 1955 में अमरीका ने **नाटीलस** नाम की पनडुब्बी (चित्र 30) बनायी जो कई महीने तक समुद्र के जल के नीचे रही। यह डेढ़ लाख किलोमीटर चलती रही और इसे एक बार भी जल के ऊपर नहीं आना पड़ा। पहली बार इस बात का प्रमाण मिला कि जल के नीचे सफलतापूर्वक यात्रा करने में अगर कोई रुकावट है तो वह पनडुब्बी की नहीं बल्कि इस बात की है कि उसमें यात्रा करने वाले व्यक्ति कितने दिन तक सतह पर आए बिना जल के नीचे रह सकते हैं।

कोरनीलियस ड्रेबल की पनडुब्बी से लेकर नाटीलस तक विभिन्न देशों ने पनडुब्बियां बनायीं तो केवल अपनी सामरिक शक्ति में वृद्धि करने के लिए। इसमें संदेह नहीं कि उनकी सहायता से जल के नीचे खोज का काम भी किया गया। लेकिन उनमें से अधिकतर केवल सैनिक दृष्टिकोण से बनायी गयीं। और फिर एक बात यह भी थी कि पनडुब्बियां जिस गहरायी तक जा सकती थीं, वह बहुत सीमित थी। सामान्यतया जो पनडुब्बियां बनायी जाती हैं वे जल में कुछ सौ मीटर तक ही पैठ सकती हैं। पनडुब्बी का उद्देश्य समुद्र पर निगरानी रखना हो या उस पर चलने वाले जहाजों पर आक्रमण करना, या कि युद्ध के लिए सैनिकों और सैनिक सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाना, पनडुब्बी के लिए इतना ही काफी है कि वह जल की सतह के नीचे रहे और समुंद्र पर यात्रा करने वाले या हवा में उड़ने वाले विमान उसे देख न सकें। लेकिन खोज कार्यों के लिए सीमित गहराई तक पहुंच सकने वाली ये पनडुब्बियां काफी नहीं हैं। खोज के लिए जो पनडुब्बियां इस्तेमाल की जाती हैं उनका उद्देश्य यह है कि समुद्र के नीचे हर कोने में पहुंच कर यह पता लगा सकें कि वहां पर क्या है। इस कारण ऐसी पनडुब्बी के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी प्रकार की बाधाओं को पार कर सके और अपने यात्रियों को सही सलामत वापस ले आए। इसके अतिरिक्त वह इस योग्य भी होनी चाहिए कि पानी के अपार दबाव को सह सके और उसमें ऐसी सुविधाएं हों कि उसमें बैठे अनुसंधानकर्ता अपना काम भलीभांति कर सकें। और फिर उसमें ऐसे यंत्र भी होने चाहिएं कि हर गहराई पर आसपास के पदार्थों और जीवों को

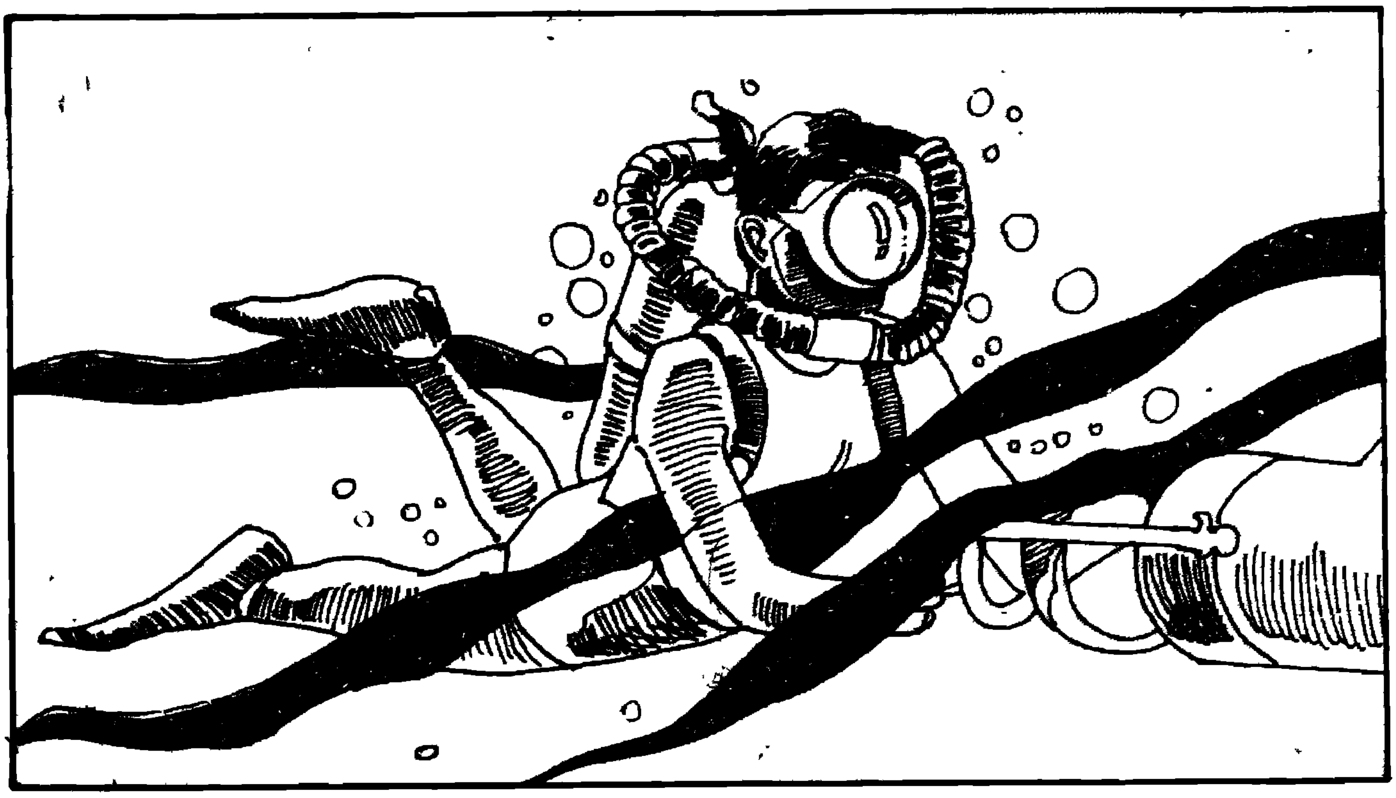
पकड़ सकें।

मानव ने जल के भीतर पहुंच कर खोज करने का जो प्रयत्न किया वह तीन प्रकार का था (1) ऐसे उपकरण बनाना जिनकी सहायता से वह जल के नीचे आवश्यक गहराई तक पहुंच सके, सांस ले सके और अपना काम बिना किसी बाधा के कर सके। केवल इसी तरीके से वह मछली की तरह जल में रह सकता है और अपना काम कर सकता है। (2) ऐसी पनडुब्बियां बना सके जिनमें बैठ कर वह जल में बहुत नीचे पहुंच सके और खोज का काम कर सके। और (3) समुद्र के तल पर पहुंच कर अपने रहने का स्थान बना सके जिससे कि (समुद्र में खोज का काम करने वालों को समुद्र यात्री कहा जाता है जैसे कि अंतरिक्ष में खोज करने वाले अंतरिक्ष यात्री कहलाते हैं। समुद्र यात्रियों के लिए जल यात्री शब्द का प्रयोग भी होता है) लंबी अवधि तक समुद्र में रह सके और उसके परिवेश का अध्ययन कर सके। खोज के इन तीनों क्षेत्रों का संक्षिप्त ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है।

एक्वालंग–जल के नीचे मानव का मित्र

प्रसिद्ध फ्रांसीसी समुद्री खोजी कप्तान कूस्तो ने कहा था : "मछली का अध्ययन करने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप भी मछली बन जाइए। और मछली या मछली जैसा बनने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि 'एक्वालंग' पहन लीजिए।" गोताखोरी एक प्राचीन पेशा है, लेकिन गोताखोर की कठिनाई सदा यह रहती है कि वह जल के नीचे सांस नहीं ले सकता। जितनी आक्सीजन उसके फेफड़ों में है, जब तक वह रहती है तभी तक उसके लिए सांस लेना संभव है। इसी कारण कोई भी गोताखोर गहरे जल में अधिक समय तक नहीं रह सकता। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक कि कप्तान कूस्तो और उसके इंजीनियर मित्र केनों ने एक्वालंग या स्क्यूबा (जल के अंदर सांस लेने का उपकरण) का आविष्कार नहीं कर दिया। इसकी सहायता से व्यक्ति जल के नीचे वैसे ही सांस ले सकता है जैसे कि वायुमंडल में। इसकी सहायता से मानव न केवल पानी में अधिक देर तक रह सकता है, बल्कि अधिक गहराई में भी जल के अपरिचित परिवेश में रह सकता है (चित्र 31)।

एक्वालंग में एक या अधिक सिलेंडर होते हैं जिनमें समपीड़ित वायु होती है। उन सिलेंडरों के साथ नलियां लगी रहती हैं जिनमें से होकर वायु गोताखोर के फेफड़ों में पहुंचती है। वायु की मात्रा कम या अधिक करने का एक पुर्जा भी



चित्र 31 : गोताखोर ने एक्वालंग, चेहरे पर नकाब और पैरों पर मीन पक्ष या फिन पहन रखे हैं।

एक्वालंग में होता है। इसके अतिरिक्त गोताखोर अपने मुंह पर प्लास्टिक का पारदर्शी नकाब-सा पहने होता है जिसमें से होकर वायु उसकी नाक तक पहुंचती है। इस उपकरण को ठीक ढंग से काम करने के लिए बनाने में बड़ी दक्षता चाहिए, क्योंकि समुद्र का भीतरी भाग अभी तक मानव के लिए अजनबी क्षेत्र है। वहां अगर यह उपकरण काम न करे तो गोताखोर तुरंत मर सकता है।

सांस लेने के अतिरिक्त दूसरी कठिनाई यह है कि जब गोताखोर अज्ञात समुद्र की गहराइयों में पहुंचता है तो उसके शरीर पर और उसकी क्रियाओं पर जल का दबाव एक ऐटमोस्फीयर (जल के दबाव की इकाई) बढ़ जाता है। उस गहराई में सामान्य वायुमंडलीय हवा में सांस लेना न केवल कठिन होता है, बल्कि गोताखोर के फेफड़ों के ठीक ढंग से काम करने के लिए भी खतरनाक हो सकता है। यहीं पर एक्वालंग उसके लिए सहायक सिद्ध होता है। उसकी पीठ पर बंधे सिलेंडरों से संपीड़ित वायु नपी तुली मात्रा में उसके फेफड़ों में पहुंचती है जिससे कि उसके शरीर के अंदर का दबाव बाहर के दबाव के बराबर रहे। एक्वालंग पहने हुए गोताखोर गहरे जल में उतनी ही सुविधा से तैर सकता है जितनी सुविधा से मछलियां तैरती हैं जिनकी नकल वह कर रहा होता है।

दो प्रकार के एक्वालंग इस्तेमाल किए जाते हैं। एक में बंद सर्किट है और दूसरे में खुला। बंद सर्किट वाला एक्वालंग सीमित प्रयोजनों के लिए प्रयोग होता है। इसमें गोताखोर शुद्ध आक्सीजन लेता है लेकिन जब वह अपनी सांस छोड़ता

है तो एक रासायनिक फिल्टर उसकी सांस की कार्बन डाइआक्साइड को फिर आक्सीजन में बदल देता है। इसी कारण एक्वालंग से जल के बुलबुले उठते हैं। बंद सर्किट वाले एक्वालंग का प्रयोग करने वाले गोताखोर कई घंटे तक जल के नीचे सांस ले सकते हैं। यह उपकरण छिछले जल में डूबी हुई नावों या जहाजों को जल से बाहर निकालने के काम आता है। लेकिन इस प्रकार के एक्वालंग का प्रयोग करने से पहले गोताखोर को प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है।

वैज्ञानिक खोज और सामान्य प्रयोग के लिए समुद्र में उतरने वाले गोताखोरों को खुले सर्किट वाला स्क्यूबा या एक्वालंग प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। हवा के सिलेंडर पर एक वाल्व लगा होता है जो अपने आप हवा की मात्रा को नियमित करता है। इस हवा में बीस प्रतिशत आक्सीजन और अस्सी प्रतिशत निष्क्रिय गैस होती है। यह हवा नलियों से गोताखोर के मुंह पर पहने नकाब में पहुंचती है। गोताखोर आसपास के परिवेश के दबाव के अनुसार सांस लेता है और उसकी छोड़ी हुई सांस के बुलबुले जल में उठते रहते हैं। इस प्रकार के एक्वालंग को पहन कर मानव बहुत अधिक गहराई तक जल में पैठ सकता है।

एक्वालंग के साथ गोताखोर को पैरों में मीन पक्ष या फिन पहनना भी आवश्यक है। वह धीरे धीरे उन्हें हिला कर तेजी से आगे बढ़ जाता है। उसके हाथ खाली होते हैं और वह जल में किसी चीज को पकड़ या थाम सकता है। ऐसा गोताखोर सिर के बल नीचे को तैर सकता है या चाहे तो पीठ के बल भी या करवट लेकर तिरछा तैर सकता है। उसके शरीर पर तंग चोगा-सा होता है जिसके कारण जल की ठंड उसकी त्वचा तक नहीं पहुंचती।

एक्वालंग पहन कर गोताखोर 60 से 70 मीटर तक नीचे जा सकता है, लेकिन कुछ दुस्साहसी गोताखोर इससे भी नीचे गए हैं। सच तो यह है कि इन समुद्र यात्रियों ने 300 मीटर नीचे तक ही पहुंचने में सफलता पाई। सीधे अधिक गहराई तक पहुंचने में सबसे बड़ी कठिनाई शरीर क्रियाओं से संबंधित है। नीचे को जाते समय गोताखोर के रक्त में जल के दबाव के कारण नाइट्रोजन का तत्व बढ़ जाता है। जब वह वापिस लौटता है और अधिक दबाव के क्षेत्र से कम दबाव वाले क्षेत्र में पहुंचता है तो नाइट्रोजन तेजी से उसके रक्त को छोड़ने लगती है और शिराओं में बुलबुले पैदा हो जाते हैं। इसके कारण शरीर के सभी अंगों में, विशेषकर जोड़ों में इतनी तीव्र पीड़ा होती है कि गोताखोर हिलडुल भी नहीं सकता। इस रोग को "बैड्स" का नाम दिया गया है और सभी गोताखोर इससे भयभीत होते हैं।

समुद्र के नीचे क्या है इसका पता लगाने के लिए कई बार जहाजों से रस्सियों

में बांध कर उपकरण जल में लटका दिए जाते हैं। इसकी तुलना उस हैलीकाप्टर से की गई है जो पृथ्वी पर विभिन्न वस्तुओं के नमूने इकट्ठे करने की चेष्टा कर रहा हो। एक्वालंग की सहायता से मानव को समुद्र के अंधकारमय भाग में पहुंच कर स्वयं सब चीजें देखने के अवसर मिलते हैं। गोताखोर समुद्र तल से विरले जीवों को लाने में सफल हुए जिनसे वहां के रंग बिरंगे परिवेश का पता चलता है। इस काम के लिए शक्तिशाली बैटरियों और कैमरों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें जल नहीं जा सकता।

एक्वालंग की सहायता से गोताखोरों ने असंख्य बार समुद्र में डूबी हुई वस्तुओं को निकाला है। सैकड़ों वर्ष पहले विभिन्न संस्कृतियों के प्राचीन केंद्रों के पास जो जहाज डूब गए थे उनका पता लगाया गया है और वहां से बहुमूल्य वस्तुएं निकाली गई हैं, जिनका बहुत ऐतिहासिक महत्त्व है। एक्वालंग की सहायता से गोताखोरों ने जहाजों के विरले माडल और नौवहन के उपकरणों का पता लगाया है। जिनके बारे में अब तक केवल पुस्तकों में ही पढ़ा था। यह इस कारण संभव हुआ कि वे समुद्र के नीचे पहुंच कर डूबे हुए जहाजों को देखने में सफल हुए हैं।

समुद्री युद्ध और नौसेना की दृष्टि से प्रतिरक्षा के क्षेत्र में स्कयूबा पहन कर गोताखोरी करना सभी देशों के लिए आवश्यक हो गया है। इसका प्रयोग न केवल पनडुब्बियों की मरम्मत, बल्कि दूसरे देशों की पनडुब्बियों की टोह लेने के लिए किया गया है। समुद्र तल में बैठी पनडुब्बियों से लोगों को निकाल कर लाने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया है।

कई पश्चिमी देशों में जल के नीचे रेस्तरां और आमोद प्रमोद के केंद्र बन गए हैं। जो लोग वहां छुट्टी मनाने के लिए जाना चाहते हैं वे एक्वालंग पहन कर उनके केंद्रों तक पहुंच सकते हैं। भविष्य में मानव न केवल आमोद प्रमोद के लिए बल्कि समुद्र से सामान निकालने के लिए, समुद्र में बने बाजारों से सामान खरीदने के लिए, समुद्र के नीचे बसी बस्तियों में अपने मित्रों से मिलने के लिए और मनोरंजन के लिए प्रयोग करने लगेगा।

अनुसंधान पनडुब्बियां - नए ढंग की अंतर्सागरीय गाड़ियां

एक्वालंग की सहायता से मानव को समुद्र की अज्ञात गहराइयों में झांकने का मौका मिला और उसकी सहायता से वह ऊपरी 200 मीटर जल में मछली के समान तैरने लगा। लेकिन इसके अधिक गहराई तक समुद्र में पहुंचने में इससे कोई सहायता नहीं मिलती। मानव ने यह फैसला किया कि ऐसे उपकरण बनाए जाएं जिनकी

सहायता से समुद्र की हर गहराई तक पहुंचा जा सके।

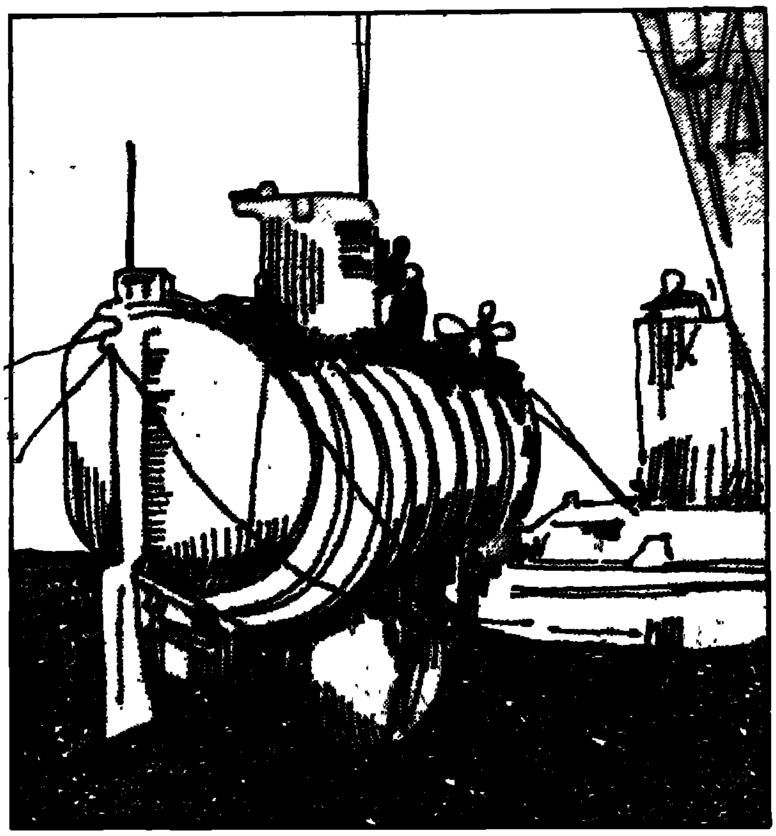
ओटिस बर्टन ने 1954 में एक बैथीस्फीयर (समुद्र निमज्जी गोला) बनाया। यह इस्पात का बना हुआ खोखला गोला था जिसका व्यास लगभग डेढ़ मीटर था और वजन ढाई टन के लगभग था। इस गोले में दो व्यक्ति बैठ कर खिड़कियों से झांक सकते थे। ये खिड़कियां गर्मी से पिघला कर स्फटिक से बनाए कांच से बनी थीं। समुद्र में खड़े जहाज से इस्पात के रस्से से बंधा यह गोला 1000 मीटर जल में नीचे उतारा गया। जहाज से इस गोले तक रबड़ की नलियां भी लगी थीं जिनमें बिजली और टेलीफोन के तार थे। इसमें नमी को सोखने के लिए कैल्शियम क्लोराइड, सांस लेने के लिए आक्सीजन के सिलेंडर, अतिरिक्त कार्बन डाइआक्साइड के वाष्पीकरण के लिए चूना, चलचित्र कैमरे और उसके बाहर तेज प्रकाश वाली सर्च लाइटें लगी थीं। प्रोफेसर विलियम बीबे इस गोले में बैठकर समुद्र की गहराइयों में पहुंचे। उनकी इस यात्रा का रोमांचकारी वर्णन कई पुस्तकों में मिलता है।

लेकिन इन गोलों में कई गंभीर त्रुटियां थीं। एक तो यह थी कि उन्हें समुद्र तल पर खड़े जहाजों से जल में उतारना पड़ता था और फिर इन्हें ऊपर खींचना पड़ता था। यह गोला ऊपर से नीचे ही जा सकता था, आगे और पीछे नहीं। आगे और पीछे जाने के लिए या तो जहाज को चलना पड़ता था या जल में चलने वाली धाराएं उसे आगे पीछे ले जा सकती थीं। दूसरी कठिनाई यह थी कि ऐसे गोले से उतनी दूर तक ही देखा जा सकता था जितनी दूर तक वे रस्से जाते थे जिनसे वह बंधा होता था और सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उस रस्से के टूटने का खतरा रहता है। अगर ऐसा हो जाए तो वह गोला जहां का तहां रह जाएगा और उसमें बैठे लोग मर जाएंगे।

स्विटजरलैंड के महान प्रोफेसर ऑगस्ट पिकार्ड ने जो बैथीस्फीयर बनाया वह तब तक बनाए गए ऐसे उपकरणों की तुलना में सबसे अच्छा था और उससे समुद्र के जल में पहुंचने में बहुत सुविधा हो गई। देखने में वह एयर शिप जैसा लगता है और उसी सिद्धांत पर चलता है। प्रोफेसर पिकार्ड ने कई वर्ष के कठोर परिश्रम के बाद 1948 में यह निमज्जी गोला बनाया जो समुद्र में अनुसंधान के लिए गहराई तक पैठ सकता था। उन्होंने बेल्जियम के अनुसंधान संगठन के सम्मान में उसका नाम एफ. एन. आर. एस. - 2 रखा। इसी संगठन ने प्रोफेसर पिकार्ड को अनुसंधान के लिए वित्तीय सहायता दी। फ्रांस की नौसेना ने यह पेशकश की कि वह उसका परीक्षण करके यह देखने के लिए तैयार है कि वह जल में ठीक से काम कर सकता

है या नहीं। एफ. एन. आर. एस. - 2 से तो यह प्रमाणित हो गया कि इस प्रकार का निमज्जी गोला सफल हो सकता है परंतु इसके डिजाइन में कुछ त्रुटियां थीं।

इस दिशा में अगला प्रयत्न इटली के नगर ट्रीस्टे के नागरिकों ने किया। उन्होंने प्रोफेसर पिकार्ड को अपने नगर में आने का निमंत्रण दिया और यह कहा कि वे अधिक अच्छे बैथीस्केफ के निर्माण के लिए पैसा देने को तैयार हैं। इसका नाम **ट्रीस्टे** रखा गया (चित्र 32)।



चित्र 32 : ट्रीस्टे नाम का बैथीस्केफ, जो जहाज से क्रेन के द्वारा जल में उतारा जा रहा है।

बैथीस्केफ बैथीस्फीयर से दो बातों में भिन्न होता है, पहली यह कि वह अपने इंजनों की सहायता से (जो बैटरियों से चलते हैं) आगे और पीछे चल सकता है। दूसरी यह कि इसे एक बार समुद्र में उतार दिया जाए तो इसे रस्सी की सहायता से जहाज से बांधे रखना आवश्यक नहीं। जहाज बैथीस्केफ को समुद्र के बीचों बीच ले जाता है जिससे कि उसे तट से समुद्र के बीच तक पहुंचने की दूरी न तय करनी पड़े। अन्यथा यह जहाज से बिल्कुल स्वतंत्र होता है।

बैथीस्केफ के तीन भाग होते हैं—सिगार या कुएं के आकार का गोंडोला (गोलाकार कक्ष) जिसमें वैज्ञानिक और इसके चालक बैठते हैं। दूसरा भाग एक फ्लोट होता है जिसमें गैस जैसा अन्य हल्का पदार्थ होता है, जो इसे समुद्र की सतह पर रख सकता है। इसका तीसरा भाग धातु के भार हैं जो इस कक्ष के नीचे लगे होते हैं जिनकी सहायता से यह नीचे पहुंच जाता है।

फ्लोट और भारों के बीच ऐसा संतुलन रखा जाता है कि यह कक्ष समुद्र के

जल में उतारा जा सकता है और वहां से फिर ऊपर नहीं आ सकता है।

फ्लोट के सीधे खड़े कक्ष पैट्रोल से भरे होते हैं और इस कारण यह नीचे लटके भारों के बावजूद ऊपर आ जाता है। अगर इनमें से किसी कक्ष में पैट्रोल के स्थान पर समुद्र का जल भर लिया जाए तो उसके वजन से यह नीचे जा सकता है। समुद्र की सतह पर लौटने के लिए या तो फ्लोट के कक्षों से समुद्र का जल निकाला जा सकता है या उसके नीचे लगे भार से कक्ष को मुक्त कर दिया जाता है।

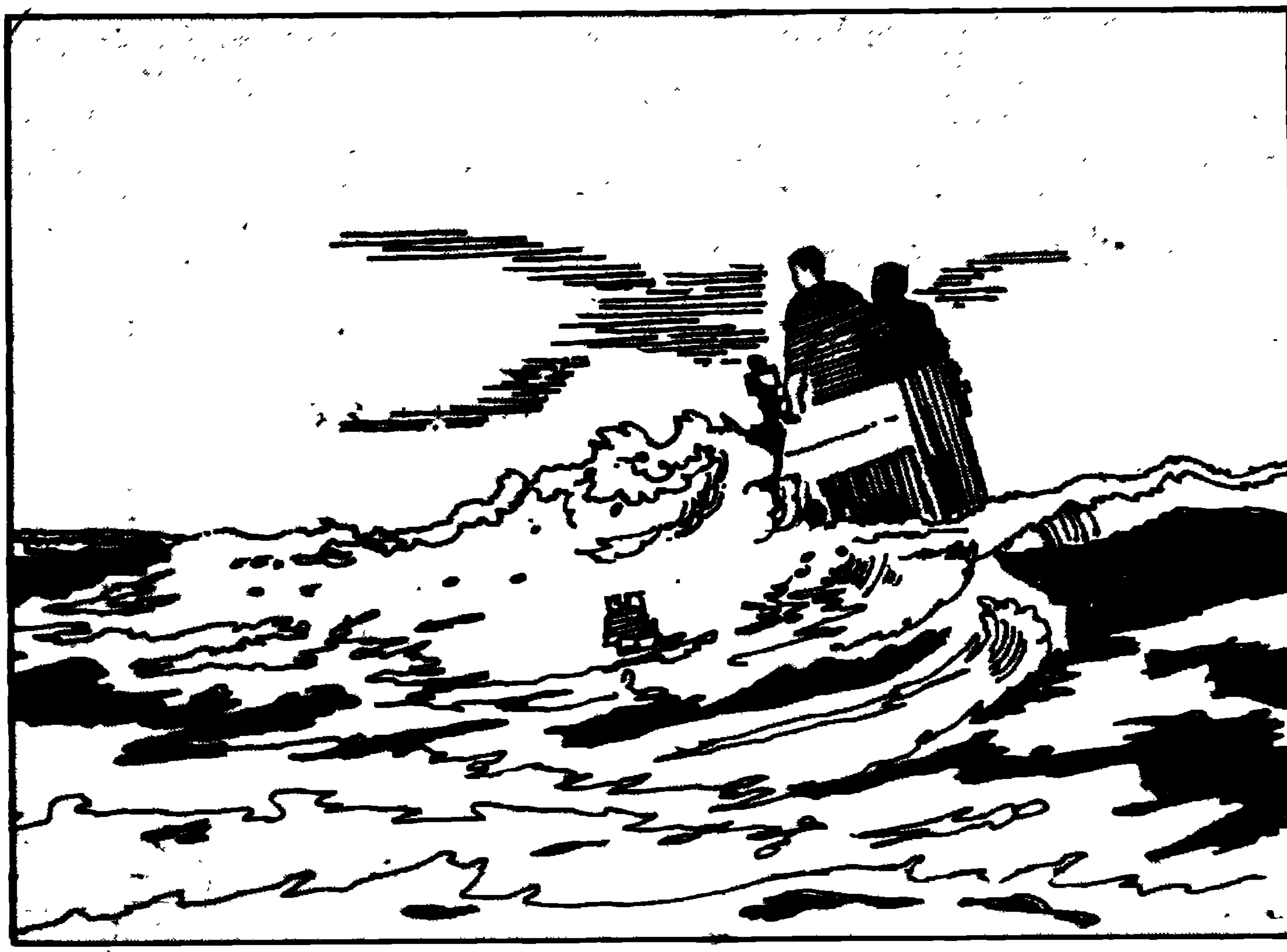
संकट की अवस्था में इन दोनों विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि यह गोला तुरंत समुद्र के ऊपर पहुंच जाए। इस कक्ष के साथ वजन बैटरियां और भारी सामान चुंबकों की सहायता से जुड़े रहते हैं। यदि उसमें बिजली न रहे तो ये भारी वजन अपने आप समुद्र तल में जा गिरते हैं और यह गोला बड़ी तेजी से समुद्र तल पर पहुंच जाता है।

गोंडोला या कक्ष, जिसमें वैज्ञानिक बैठ कर काम करते हैं, कई उपकरणों के लिए रहता है। इसमें उसकी गति को नियंत्रित करने के लिए उपकरण भी लगे होते हैं। वैज्ञानिक उपकरणों के साथ इसमें टी. वी. कैमरे, वातानुकूल के उपकरण, रेडियो और टेलीफोन आदि भी होते हैं। गोंडोला में वैज्ञानिकों के रहने का सुविधाजनक प्रबंध रहता है जहां उनके नहाने के लिए मीठा जल, आमोद-प्रमोद की सुविधाएं और सांस लेने के लिए गैस आदि की व्यवस्था रहती है। गोंडोला के बाहर बैटरियां होती हैं जिनमें जल नहीं घुस सकता। उसके साथ ही यंत्रचालित उपकरण भी होते हैं जिनकी सहायता से बाहर की वस्तुओं को पकड़ा जा सकता है या उन्हें इकट्ठा किया जा सकता है। इन वस्तुओं को रखने के लिए बाहर थैले लगे होते हैं। जल के नमूने, थर्मामीटर और टार्च आदि को रखने की व्यवस्था भी होती है। इसकी खिड़कियां कृत्रिम कांच (प्लैक्सी) की बनी होती हैं जिनसे इसमें बैठे वैज्ञानिक यह देख सकते हैं कि कक्ष के बाहर क्या है और उसके चित्र भी खींच सकते हैं।

इसके नीचे लगा फ्लोट इस ढंग से बनाया जाता है कि समुद्र का जल नीचे के हिस्से में भर जाता है। जब यह जल में नीचे को जाता है तो पैट्रोल में भर जाता है और उसके बाहर और अंदर का दबाव एक समान हो जाता है।

बाद में अमरीका की नौसेना ने **ट्रीस्टे** को खरीद लिया। उसमें और कई सुधार किए और उसका प्रयोग विश्व के विभिन्न समूहों में पैठने के लिए किया गया। सबसे महत्त्वपूर्ण अवसर तो 7 जून, 1967 को आया जब **ट्रीस्टे** के आविष्कारक के पुत्र जेक्स पिकार्ड और अमरीका की नौसेना के लेफ्टिनेंट डोनल्ड वाल्श इसमें

बैठ कर पूर्वी प्रशांत महासागर के मैरियाना ट्रैंच क्षेत्र में जल में 8,000 मीटर तक नीचे गए (चित्र 33)। उसके कुल दो सप्ताह बाद, 25 जुलाई को इन्होंने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया, क्योंकि ये मैरियाना ट्रैंच के सबसे अधिक गहरे भाग में 10,915 मीटर तक नीचे पहुंचे।



चित्र 33 : सयुक्त राज्य अमरीका की नौसेना के डोनल्ड वाल्श समुद्र से बाहर आने के लिए अपने बैथास्कैफ में प्रतीक्षा करते हुए।

ट्रीस्टे की इस यात्रा से पता चला कि इस शांत, अंधकारमय और निश्चल जल में भी जीव रहते हैं। इसके बाहर लगे यंत्रों की सहायता से ट्रस्टेशियाई जीव और मछलियां पकड़ी गयीं और उन्हें अच्छी हालत में समुद की सतह पर लाया गया।

पिकार्ड और वाल्श को समुद्र तल तक पहुंचने में चार घंटे 42 मिनट का समय लगा। वहां पर जल का दबाव 1,000 एटमोस्फीयर से अधिक है, संपूर्ण अंधकार है जिसमें यह पता नहीं चलता कि दिन है या रात तथा नीचे पड़े हुए कुछ पदार्थों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ये दोनों तीस मिनट तक इस अविश्वसनीय निस्तब्ध संसार का आनंद लेते रहे, जब उन्होंने सर्च लाइट के प्रकाश में देखा कि एक मछली धीरे धीरे तैरते हुए उनकी खिड़की के पास आई तो उन्हें

अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। मछली ने कुछ समय तक इन लोगों को देखा और फिर धीरे धीरे लौट गई। कुछ ही क्षण बाद तांबे के रंग की एक शिल्प नाम की छोटी मछली थिरकती हुई आई। लेकिन तेज प्रकाश को देख कर वहां से भाग गई। इन्हें वापिस समुद्र के ऊपर लौटने में 3 घंटे 17 मिनट का समय लगा।

ट्रीस्टे की इस सफल यात्रा के बाद कई अन्य बैथीस्केफ बनाए गए। एल्यूमीनोट नाम का बैथीस्केफ एल्यूमिनियम से बना है, जिसका वजन कम है। यह नियमित रूप से समुद्र की गहराइयों तक पहुंच सकता है और 8,000 मीटर की गहराई तक जा सकता है। यह काफी मजबूत है और अन्य बैथीस्केफों के सिद्धांत के आधार पर ही बनाया गया है। लेकिन इसमें एक अंतर है और वह यह कि यात्री इसके साथ लगे गोंडोला के बजाय इसी के अंदर बैठते हैं। वुड्स होल समुद्र विज्ञान संस्था का निमज्जी गोला **आल्विन** नाम का है। इसे जल में चलाना बहुत सुविधाजनक है। यह छिछले जल के जीव जंतुओं के अध्ययन के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इसकी सहायता से अमरीका के पूर्वी तट के समुद्र के बहुत बड़े क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जा चुका है।

सन् 1960 में अमरीका ने आर. यू. एस. (रिमोट कंट्रोल अंडर सी मैनेप्यूलेटर) नाम के बैथीस्केफ का परीक्षण किया, जिसमें कोई व्यक्ति नहीं बैठता। इसका निर्माण कैलीफोर्निया के तट पर समुद्र विज्ञान की प्रसिद्ध संस्था- स्क्रिप्स इंस्टीट्यूट - ने किया है। इसमें टैंक जैसी एक गाड़ी है, जिसके चक्कर पर बांह जैसा एक यंत्र लगा है जिसकी पहुंच साढ़े चार मीटर तक है।

इन यांत्रिक बांहों के कंधे, कुहनियां और कलाइयों के मोड़ भी हैं, जिनके आगे लगे हाथों से न केवल समुद्र के तल से वस्तुएं उठाई जा सकती हैं, बल्कि उपकरण भी लगाए जा सकते हैं। टी. वी. कैमरा से समुद्र के तल को देखा जा सकता है। इसका संचालन तट पर बने नियंत्रण केंद्रों से रेडियो के माध्यम से किया जाता है। एक और निमज्जी कक्ष, जिसमें कोई बैठा नहीं होता और जो समुद्र में बहुत नीचे तक पहुंच सकता है, **डीप डिप** है। इसमें ऐसे उपकरण लगे हुए हैं जिनसे चुंबकीय, रेडियो सक्रिय, ध्वनि संबंधी और विद्युत चुंबकीय तरंगों को मापा जा सकता है। इसका प्रयोग समुद्र के नीचे चित्र खींचने के लिए, जल की धाराओं को नापने के लिए और तल पर पड़े पदार्थ उठाने के लिए भी किया जा सकता है। यह कई बार समुद्र के तल पर भेजा गया और कुछ सप्ताह या कुछ महीने बाद इसे बाहर निकाला गया। उसके बाद यंत्रों की सहायता से इकट्ठी की गई

जानकारी का अध्ययन और विश्लेषण किया गया।

बैथीस्केफ भी **डाइविंग सासर** नाम की जल के नीचे चलने वाली छोटे आकार की गाड़ी की तुलना में मद्धिम गति वाले हैं। इसका आविष्कार प्रसिद्ध जल यात्री कप्तान कूस्तो ने किया है। यह गाड़ी थाली के आकार की है और इसका व्यास दो मीटर से अधिक नहीं है। दो व्यक्ति लेट कर इसमें जा सकते हैं। इसकी गति पंद्रह-बीस नॉट (समुद्र में दूरी का माप) तक होती है। यह कई घंटे तक समुद्र में बहुत गहराई तक रह सकती है। **कोनशेल्फ** नाम की समुद्र में बसी बस्तियों (इनके बारे में आगे चल कर पढ़ेंगे) में सहायता के लिए इस यान का आविष्कार किया गया था। थाली जैसे इस यान ने जल के नीचे अपने करबत दिखाये। कूस्तो ने बताया है कि एक बार जब वे इसमें बैठ कर तेजी से जा रहे थे तो मछलियों का एक बहुत बड़ा झुंड डर कर तितर-बितर हो गया। कूस्तो यह अध्ययन करने गए थे कि मछलियां किस प्रकार झुंडों में चलती हैं। सच पूछा जाए तो यह छोटा सा यान पृथ्वी की उस कार के समान है जिसे लोग शौक से चलाते हैं। लेकिन यह किसी दौड़ में हिस्सा लेने के लिए नहीं बल्कि अनुसंधान के काम आती है।

बैथीस्केफ और गोता लगाने वाले थालियों जैसे ये यान समुद्र के नीचे अनुसंधान के काम तो आते ही हैं, आगे चल कर यह आशा की जा सकती है कि वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ समुद्र के नीचे के संसार पर विजय पा लेंगे। वहां से वे न केवल खाद्य पदार्थ इकट्ठे कर सकेंगे बल्कि वहां पर मानव के रहने का परिवेश भी तैयार कर सकेंगे। हो सकता है कि तेज रफ्तार गाड़ियों का आविष्कार भी हो जाय जो भूमि पर भी चल सकें और समुद्र में भी।

समुद्र के अंदर निवास

तटीय ढलानें जो समुद्र में नीचे तक जाती हैं, उन पर मानवों के रहने के लिए बस्तियां बनाना वैज्ञानिकों का सपना ही नहीं रह गया है, बल्कि यह एक यथार्थ बन गया है। समुद्र के भीतर पैर जमाने पर मानव ने करोड़ों रुपया खर्च किया है और कई उन्नत देशों में इस दिशा में बहुत बड़ी प्रगति हुई है। वैज्ञानिकों के लिए समुद्र उस जंगल के समान नहीं रहा जहां शिकारी शिकार की तलाश में घूमते हैं। यह एक ऐसा निर्जन प्रदेश है जिसे मानव के निवास के अनुकूल बनाया जा सकता है।

एक्वालंग पहन कर गोता लगाना या समुद्र के अंदर चल सकने वाले यानों में यात्रा करके उन रहस्यों का पता लगाया जा सकता है, जो समुद्र की गहराइयों

में छिपे हैं। लेकिन मानव का अंतिम उद्देश्य तो समुद्र पर विजय पाना है। और उसके अंदर उन स्थानों पर अपनी बस्तियां स्थापित करना है जहां पर खाद्य पदार्थ और खनिज पदार्थों का बाहुल्य है। इस प्रकार मानव सीमित भूमि के लिए बढ़ती हुई मांग का कुछ अंश पूरा कर सकता है।

समुद्र के नीचे जो बहुमूल्य पदार्थ हैं वे संकरे कोंटीनेंटल शेल्फों में हैं। ये वह क्षेत्र हैं जो तट से धीरे धीरे नीचे की ओर समुद्र में 200 मीटर की गहराई तक फैले हुए हैं। कोंटीनेंटल शेल्फ की चौड़ाई एक जैसी नहीं होती। उदाहरण के लिए सौराष्ट्र के तट पर यह कहीं कहीं 100 किलोमीटर से भी अधिक चौड़ा है। लेकिन आंध्र के तट पर इसकी चौड़ाई कुछ ही किलोमीटर है। यह अनुमान लगाया गया है कि संसार भर के कोंटीनेंटल शेल्फों के क्षेत्र को जोड़ा जाय तो वह अफ्रीका महाद्वीप के क्षेत्रफल के बराबर हो जाता है। अगर मानव इन कोंटीनेंटल शेल्फों पर अपनी बस्तियां बसा ले, जो तटों के समीप होंगी तो उसे एक महाद्वीप के बराबर का क्षेत्र रहने के लिए उपलब्ध हो जाएगा।

एक्वालंग के सहआविष्कारक कप्तान कूस्तो ने जल के नीचे मानवों के रहने की व्यवस्था करने में भी पहलकदमी की है। उन्होंने इस बात की कल्पना की है कि भविष्य के जल यात्री समुद्र के जल पर ऐसे स्थानों में रहेंगे जो सूखे होंगे और जहां वायु भी होगी। यहां पर वे लोग एक्वालंग पहने या भूमि के नीचे चलने वाले यानों में बैठ कर घूम फिर सकेंगे। उनके रहने के स्थान को जल से मुक्त करने में कोई समस्या नहीं है। जल के अंदर कोई भी ऐसा स्थान जल से मुक्त रखा जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उस स्थान के अंदर जो हवा है उसका दबाव आसपास के जल से तनिक अधिक हो। समुद्र में प्रत्येक दस मीटर की गहराई पर दबाव में एक एटमोस्फीयर की वृद्धि हो जाती है। इस कारण अगर 30 मीटर की गहराई पर जल में कोई मकान बनाया जाए तो उसमें हवा का दबाव तीन एटमोस्फीयर से कुछ अधिक होना चाहिए। यद्यपि दबाव वाले वायु के क्षेत्र में अधिक समय तक रहना मानव शरीर पर तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

200 मीटर गहरे समुद्र में रहना असंभव नहीं है। कोंटीनेंटल शेल्फ की सीमा भी तो 200 मीटर ही है। यहां पर रहने से मानव के शरीर कि क्रियाओं पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। हां, यह आवश्यक है कि जब गोताखोर वायुमंडल की ओर चले तो उसके शरीर के अंदर का दबाव धीरे धीरे कम करना पड़ेगा। यदि वापसी पर वह तेजी से समुद्र की सतह की ओर जाये तो नाइट्रोजन या हीलियम जैसी

निष्क्रिय गैसें जो उसके रक्त में प्रवेश कर जाती हैं, झाग के रूप में उठने लगती हैं जिनसे उसके शरीर और विशेषकर जोड़ों में इतनी पीड़ा होती है कि वह हिलने डुलने में असमर्थ हो जाता है। लेकिन यदि इन गैसों को धीरे धीरे रक्त से निकल जाने का समय दिया जाये, तो यह कष्ट नहीं होता। इस प्रक्रिया के लिये यह जरूरी है कि गोताखोर जल से ऊपर उठते समय प्रत्येक गहराई पर थोड़ा थोड़ा समय रुक कर इन गैसों को अपने रक्त से निकलने दें।

कोन्शेल्फ I सबसे पहला समुद्र के जल में रहने का प्रयोग था जिसकी योजना कप्तान कूस्तो और उसके साथियों ने बनायी और उसका काम भी पूरा किया। उसके बाद उन्होंने कोन्शेल्फ-II और कोन्शेल्फ-III जैसी अधिक जटिल योजनाओं का काम भी पूरा किया। इन प्रयोगों का अध्ययन अमरीकन, ब्रिटिश और रूसी वैज्ञानिक करते रहे हैं और उन्होंने समुद्र के भीतर निवास की तकनीकों को और आगे बढ़ाया है।

कोन्शेल्फ-II सबसे पहले सफल प्रयोगों में एक था जिसके अंतर्गत पांच व्यक्ति एक कक्ष में रहे जिसका नाम था **स्टारफिश हाउस**। यह समुद्र के जल में दस मीटर नीचे था। ये लोग एक महीने तक इस कक्ष में रहे और एक बार भी जल से बाहर नहीं आए। इस कक्ष के पैंदे में बाहर निकलने का एक स्थान था, जो दरवाजा होते हुए भी दरवाजे जैसा नहीं था और इसमें रहने वाले लोग जब चाहते, कक्ष से बाहर आ सकते थे। ये जलयात्री एक्वालंग पहने होते थे और कक्ष से बाहर आकर 12 घंटे तक काम करते थे। इस समय में वे जल से जीव जंतुओं के नमूने इकट्ठे करते थे। कक्ष में आराम से रहने की सभी सुविधाएं उपलब्ध थीं। वहां न केवल प्रयोगशालाएं और रहने का आरामदेह स्थान था बल्कि आमोद प्रमोद की भी व्यवस्था थी। नहाने के लिए मीठा जल, टी. वी., टेलीफोन (जो समुद्र की सतह पर खड़े जहाज से संपर्क रखने में सहायक था) और वातानुकूलन की व्यवस्था थी। **कैलेप्सो** नाम का जहाज समुद्र में खड़ा था और वह नियमित रूप से डिब्बों में जिनमें जल नहीं जा सकता था, और जिनका तापमान भी बदलता नहीं था, भोजन, अखबार, और चिट्ठियां नीचे डाल देता था और इस कक्ष में रहने वाले लोग उन डिब्बों को कक्ष में ले जाते थे। एक डाक्टर प्रतिदिन जल में उतर कर इस कक्ष में पहुंचता था और वहां पर रहने वाले लोगों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का परीक्षण करता था।

कोन्शेल्फ-II कार्यक्रम के अंतर्गत 25 मीटर की गहराई पर एक चौकी स्थापित की गई। उसमें दो व्यक्ति एक सप्ताह तक रहे। इस प्रकार विभिन्न गहराइयों पर

रहने वाले व्यक्तियों की शारीरिक अवस्था का निरीक्षण किया जा सकता था। **डाइविंग सासर** (जिसकी चर्चा हम पहले कर आए हैं) की सहायता से **स्टारफिश हाउस** और 25 मीटर नीचे बने कक्ष के बीच संपर्क रखा जा सकता था। डाइविंग सासर की सहायता से काफी लंबे चौड़े क्षेत्र में अनुसंधान करना भी आसान था। जब इसका प्रयोग नहीं किया जा रहा होता था तो इसे एक कक्ष में, जो विशेष रूप से इसके लिए बनाया गया था, रख दिया जाता था और **स्टारफिश हाउस** के साथ बांध दिया जाता था।

कोन्शेल्फ-II इतना सफल था कि इसके बनाने वाले स्वयं चकित हो गए। इतिहास में पहली बार एक महीने तक ये बुलबुले छोड़ने वाली, बिना मीन-पंखों वाली, दो पूंछों वाली मछलियां जो पृथ्वी से आई थीं समुद्री जीवों के साथ इन्हीं के परिवेश में रहती रहीं।

अमरीका में नौसेना और कई अन्य गैर सरकारी संगठनों ने समुद्र में मानवों के रहने की व्यवस्था की। गैर सरकारी संगठनों में एक के नेता थे एडवर्ड ए. लिंक जिन्होंने समुद्र में रहने की समस्याओं का अध्ययन करने में बहुत योगदान दिया था। लिंक ने जिन परियोजनाओं को जन्म दिया उनका नाम था "मैन इन दि सी"। इनके अंतर्गत जो कक्ष बनाए गए थे, इनमें से एक **एस. पी. आइ. डी. (सबमर्ज्ड, पोर्टेबल, इंफ्लेटेबल ड्वैलिंग)** जल में डूबा हुआ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकने वाला और हवा भर कर रबड़ का बनाया हुआ तंबू है जो ढाई मीटर लंबे और एक मीटर से अधिक व्यास वाला है। इसके नीचे इस्पात का ढांचा है, इसे जल में डाल कर इसमें हवा भर दी जाती है जिससे कि इसके अंदर हवा का दबाव आसपास के जल के दबाव के बराबर हो जाता है। इसके पैंदे से इसमें घुसा जाता है और दबाव के परिवर्तनों के होते हुए भी यह सीधा खड़ा रहता है। इसमें गैस के सिलेंडर, गैस के इसमें संचलन की व्यवस्था, टी. वी. कैमरा, संचार उपकरण, भोजन, जल, औजार और जल के अंदर सांस लेने के उपकरण हैं जो इसके ढांचे पर ऐसे बक्सों में बंद हैं जिनमें पानी नहीं जा सकता। इसके पैंदे के नीचे परात जैसा एक उपकरण है जिसमें पड़ा भार इसे जल में सीधे रखता है।

लिंक ने जल के भीतर रहने को सुविधाजनक बनाने के लिए जिन उपकरणों का आविष्कार किया उनमें एक **एस. डी. सी. (सबमर्सीबल डी-कम्प्रेशन चेंबर)** जल में डाला जा सकने वाला कक्ष जो संपीड़न की प्रक्रिया को निष्प्रभावी बना देता है। यह देखा गया कि जब कोई गोताखोर कुछ समय तक जल के भीतर रहे तो उसके बाद वह अपनी इच्छानुसार समुद्र से बाहर नहीं आ सकता। उसे हर गहराई

पर थोड़ा थोड़ा रुकना पड़ता है जिससे कि उसके रक्त में प्रविष्ट हुई निष्क्रिय गैस धीरे धीरे निकल जाय। यह एक कष्टदायक अनुभव है और इसमें कई घंटे या कई दिन भी लग सकते हैं। **एस. डी. सी.** जल में चलने वाली लिफ्ट के समान है जिसमें बैठ कर गोताखोर ऊपर आ सकता है। यह एल्यूमीनियम का बना हुआ तीन मीटर लंबा और एक मीटर व्यास वाला सिलेंडर है जिसमें गोताखोर आराम से बैठ जाता है। बहुत समय तक गहरे समुद्र में रहने के बाद गोताखोर **एस. डी. सी.** के खुले द्वार से इसमें बैठ जाता है। जब उसका द्वार खोला जाता है तो उसके अंदर वायु का दबाव आसपास के जल के बराबर होता है। जब गोताखोर उसमें बैठ जाता है तो उसे रस्सों की सहायता से ऊपर खींच लिया जाता है और जहाज पर रख दिया जाता है। ऐसा लगता है मानो गहरे जल का एक अंश जहाज पर ले आया गया है। अब गोताखोर उसी में बैठा बैठा हवा के दबाव को बदल कर अपने रक्त में प्रविष्ट हुई गैस को धीरे धीरे पूरी तरह निकलने देता है या उसे जहाज के एक कक्ष में ले जाया जाता है जो इसी प्रयोजन के लिए बना होता है। यदि गोताखोर को जहाज के उस कक्ष में ले जाया जाय तो उसे अधिक सुविधा होती है क्योंकि वह उसमें चल फिर सकता है। इस व्यवस्था का लाभ यह है कि गोताखोर को जल में ही थोड़ी अधिक ऊंचाई पर रुकना नहीं पड़ता और उसके रक्त से निष्क्रिय गैस की मात्रा को निकालने का काम जहाज में ही चलता रहता है और जहाज तट की ओर चलता रहता है। इस प्रकार न तो गोताखोर को असुविधा होती है और न जहाज को समुद्र में खड़े रह कर समय गंवाना पड़ता है।

विसंपीड़न (रक्त में प्रविष्ट हुई निष्क्रिय गैस को पूरी तरह निकालने की प्रक्रिया) के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गोताखोर गहरे समुद्र में जितने समय तक रहेगा उतना ही समय इस गैस को उसके रक्त से निकलने में लगेगा। जब रक्त में निष्क्रिय गैस पूरी तरह भर जाती है तो उससे अधिक गैस उसमें प्रविष्ट नहीं होती चाहे गोताखोर कितने ही समय जल में क्यों न रहे। यही कारण है कि गोताखोर और जलयात्री कुछ प्रारंभिक असुविधा के बाद गहरे समुद्र में रहने में सुख की प्राप्ति करते हैं।

अमरीका की नौसेना ने अपने कक्ष **सी लैब-I** में बरमूदा तट के पास जुलाई, 1964 में प्रयोग किया। **सी लैब** बेलनाकार कक्ष था, जो समुद्र की सतह से बीस मीटर नीचे था। इसमें चार आदमी दस दिन तक रहे। लगभग एक वर्ष बाद अमरीका की नोसैना ने **सी लैब-2** का प्रयोग किया जो 45 दिन तक चला। इसके अंतर्गत दस दस व्यक्तियों के तीन दलों ने पंद्रह पंद्रह दिन का समय जल के नीचे बिताया।

इसमें से एक व्यक्ति पंद्रह पंद्रह दिन की दो अवधियों के लिए इस कक्ष में रहा और एक जलयात्री, स्काट कारपेंटर, लगातार 30 दिन तक रहा। यह कक्ष 18 मीटर लंबा और चार मीटर चौड़ा था और कैलीफोर्निया के लाजोला स्थान में स्क्रिप्स समुद्र विज्ञान संस्था के पास 65 मीटर गहरे जल में रखा गया। इन लोगों ने जल में डूबे एक विमान का ढांचा बाहर निकाला, जीव विज्ञान और समुद्र विज्ञान संबंधी अनुसंधान किए और स्वयं अपने पर शरीर क्रिया विज्ञान और मनोविज्ञान संबंधी परीक्षण किए। ये लोग जो कपड़े पहने थे वे बिजली की सहायता से गर्म रखे जाते थे और इस कारण 13 डिग्री सेल्सियस ठंडे जल में भी इन्हें असुविधा नहीं हुई।

कूस्तो का **कोन्शेल्फ-III** नाम का प्रयोग भूमध्य सागर में केप फेराट के पास किया गया। यह जल के भीतर रहने के सफल प्रयोगों में से था। इसके अंतर्गत छह व्यक्ति 22 दिन तक एक गोलाकार कक्ष में रहे, जो 100 मीटर गहरे जल में था, समुद्र की सतह के साथ इसका संबंध केवल बिजली और टेलीफोन की तारों के माध्यम से था। इन समुद्र यात्रियों ने जो जोखिम भरे काम किए, उनमें से एक यह था कि 120 मीटर नीचे तेल के कुएं का मुंह था जिस पर पांच टन का भार रखा हुआ था। उससे दबाव वाली वायु डाल कर तेल निकाला जाता था। इन लोगों ने यह प्रमाणित कर दिया कि गोताखोर समुद्र की गहराइयों में भी वैसा ही कठोर शारीरिक और मानसिक श्रम कर सकते हैं जैसा कि पृथ्वी पर।

सी-लैब-3 में बैठे लोगों ने 120 मीटर गहरे जल में जो काम करके दिखाये वह तब तक जल के नीचे किए गए किसी भी काम की तुलना में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थे। पहली बार मानव को ऐसा लगा कि उसने समुद्र की गहराइयों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया है।

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने जल के नीचे रह सकने की संभावना को और अधिक उजागर कर दिया है। अब केवल एकाध घर जल के नीचे बनाने की बात नहीं सोची जा रही बल्कि पूरी पूरी बस्तियां बसाने की बात सोची जा रही है। ब्रिटेन के विद्यार्थियों के समूह ने एक ऐसी योजना तैयार की है जिसके अंतर्गत दस व्यक्ति 60 मीटर की गहराई पर छह महीने तक रह कर काम कर सकते हैं। इस परियोजना का एक उद्देश्य यह था कि गोताखोर न केवल समुद्री जीवों और वहां उपलब्ध पौधों का अध्ययन करें, बल्कि यह भी देखें कि इन पौधों की खेती करके विश्व में खाद्य पदार्थों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है या नहीं। इन गोताखोरों ने इस बात का अध्ययन किया कि बड़े बड़े समुद्री जीव और मछलियां किस प्रकार ऋतुओं

के अनुसार एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर चली जाती हैं। उन्होंने यह भी पता लगाया कि समुद्र तल पर कौन से खनिज पदार्थ उपलब्ध हैं और उन्हें किस प्रकार निकाला जा सकता है। इस परियोजना के अंतर्गत इस काल का भी अध्ययन किया गया कि समुद्र के अजनबी परिवेश में लंबे समय तक कठोर परिश्रम करते हुए इन गोताखोरों का व्यवहार कैसा रहा।

पश्चिमी जर्मनी की पहली प्रयोगशाला जो समुद्र की गहराई में स्थापित की गई **हैलगोलैंड** नाम की थी। इसे 1969 में पूर्वी हैलगोलैंड तट से तीन मील दूर उत्तरी सागर में उतारा गया। कहा जाता है कि यह संसार की सबसे बड़ी समुद्री प्रयोगशाला थी जो 21 मीटर गहरे जल में काम कर रही थी। **हैलगोलैंड** दस मीटर लंबा बेलनाकार कक्ष था जिसके नीचे चार टांगें लगी थीं जिनको घटाया या बढ़ाया जा सकता था। इसके ऊपर एक प्लव (बोया-पानी में तैरता रहने वाला उपकरण) लगा था जिसमें बिजली के लिए डीजल का इंजन, एक कर्म्प्रेसर, आक्सीजन और तट पर स्थित केंद्र के साथ रेडियो संपर्क के उपकरण थे। जर्मनों ने कई वर्ष तक ये प्रयोग किए जिनके परिणामस्वरूप समुद्र के नीचे के संसार और वहां पर मानवों के रहने के बारे में बड़ी बहुमूल्य जानकारी प्राप्त हुई।

एशिया के राष्ट्रों में जापान एकमात्र देश है जिसने समुद्र के नीचे खोज और प्रयोगों के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्रों के समान जापान ने समुद्र के भीतर प्रयोग करने में भी अपनी समझ बूझ का परिचय दिया। जापान में कई व्यापारी कंपनियां हैं जो जल के नीचे चल सकने वाले यानों और विशेषज्ञ गोताखोरों के माध्यम से जल के नीचे अनुसंधान में अपना योगदान दे रही हैं। यद्यपि जापान ने समुद्र के नीचे प्रयोग देर से शुरू किए हैं, फिर भी वह इस क्षेत्र में कई देशों से आगे निकल चुका है।

कनाडा की एक कंपनी-दि इंटरनेशनल सबमैरीन इंजीनियरिंग लिमिटेड- ने जल के भीतर जाने वाले यानों और उपकरणों का निर्माण किया है। इनमें से एक **टी. आर. ई. सी. (टैदर्ड रिमोट कैमरा**-एक स्थान से बंधा हुआ कैमरा जो दूर से चित्र ले सकता है) है। इसका आविष्कार इस कारण किया गया कि जल के नीचे प्रयोगों में सहायता के लिए तेजी से काम करने वाला एक सस्ता उपकरण उपलब्ध हो सके। इस कंपनी द्वारा एक और उपकरण का आविष्कार किया गया है जिसका नाम है **सीमार्क (सी मैपिंग एण्ड रिमोट कैरेक्टराइजेशन**–दूर से समुद्र के भीतरी मानचित्रों की तैयारी) यह समुद्र तल के चित्र ले सकता है और उसके ऊबड़ खाबड़ तल तथा उस पर पड़े पदार्थों का ब्यौरा जहाज या किसी अन्य समुद्र के भीतर

चल रहे यान तक पहुंचा सकता है। इस प्रकार के सर्वेक्षणों से काफी गहरे समुद्र में उसके तल के मानचित्र तैयार किये जा सकते हैं और तल पर पड़ी वस्तुओं को बाहर निकाला जा सकता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां, विशेषरूप से वे जो तेल की खोज और खनिज पदार्थ निकालने में लगी हुई हैं, इन उपकरणों से बहुत लाभान्वित हो सकती हैं।

अब तक समुद्र तल पर मानव के रहने की व्यवस्था करने के प्रयोग मात्र ही किए गए हैं, समुद्र में कोई स्थायी निवास स्थान नहीं बनाए गए। परंतु आर्थिक दृष्टिकोण से इन प्रयोगों का बहुत महत्त्व है। अनुमान लगाया गया है कि सारे विश्व में 1,500 से अधिक लोग हैं जिन्होंने समुद्र में गोताखोरी और बहुत गहराई तक रहने में विशेषज्ञता प्राप्त की है। इन लोगों ने अपने आपको बहुत प्रशिक्षित किया है और इस जोखिम भरे पेशे में बहुत अनुभव हासिल किये हैं। इन लोगों को वेतन भी बहुत मिलता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां समुद्र के भीतर तेल की खोज, समुद्र में तेल के पाइप बिछाने, समुद्र के भीतर जंग किस प्रकार लगता है, इसका अध्ययन करने, वहां के परिवेश और शरीर की क्रियाओं पर समुद्र के प्रभाव और उससे भी अधिक सैनिक गुप्तचर्या के जटिल काम के लिए बड़े ऊंचे वेतन देकर नौकर रखती है। सच तो यह है कि विकसित देशों में समुद्र की खोज और समुद्र तल पर पड़े पदार्थों के प्रयोग के क्षेत्र में बड़ी परिष्कृत तकनीकों का विकास हो चुका है। उनकी यह प्रगति अंतरिक्ष की खोज के समान समुद्र की खोज में भी बहुत अधिक हो चुकी है। परंतु भारत जैसे विकासशील देशों ने इस क्षेत्र में अभी शुरुआत भी नहीं की। आशा करनी चाहिए कि भारत की नौसेना समुद्र के नीचे खोज की तकनीकों का विस्तार करने और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को इस काम का प्रशिक्षण देने पर विचार करेगी और इस काम को प्राथमिकता देगी।

8

भविष्य

दूसरे विश्व युद्ध तक हिंद महासागर एक झील के समान था जिस पर ब्रिटेन का एकाधिपत्य था। लेकिन एशिया के देशों में आजादी की लहर के बाद हिंद महासागर के तटों पर रहने वाले लोग इसकी खोज कर सकते हैं और इससे यथासंभव लाभ उठा सकते हैं। हिंद महासागर का क्षेत्र 7,40,49,290 वर्ग किलोमीटर है। इसके तटों पर लगभग तीस राष्ट्र हैं जिनमें दुनिया की कुल जनसंख्या का तीसरा भाग रहता है। इन राष्ट्रों में सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण राष्ट्र भारत है जिसकी जनसंख्या 86 करोड़ और जिसका तट 6,000 किलोमीटर लंबा है। विश्व में दस और ऐसे देश हैं, जिनका तट भारत जितना विशाल है या उससे अधिक है।

हाल ही में विश्व राष्ट्रों ने इस बात को स्वीकार किया कि प्रत्येक राष्ट्र के तट से 200 किलोमीटर समुद्र की ओर का क्षेत्र उसका आर्थिक क्षेत्र कहलाएगा। इसका परिणाम यह हुआ है कि समुद्र में हमारी आर्थिक सीमाएं बढ़ गई हैं और भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग एक तिहाई (5,87,600 वर्गमील) हमारे क्षेत्र में जुड़ गया है। इसलिए इस बात की बहुत आवश्यकता है कि हिंद महासागर का अध्ययन गहराई से और तुरंत शुरू किया जाए। हमने समुद्र तट के पास तेल की खोज बड़ी गहनता से प्रारंभ कर दी है। इसका यह परिणाम होगा कि समुद्र की इंजीनियरी और तकनीकों में बहुत प्रगति होगी। समुद्र में जो पदार्थ उपलब्ध हैं उनसे लाभ उठाने के क्षेत्र में हम और अधिक अच्छी स्थिति में पहुंच गए हैं। अब हमें यह लक्ष्य रखना चाहिए कि हम अपनी जनता के सर्वतोंमुखी विकास के लिए समुद्र में उपलब्ध पदार्थों से लाभ उठाने के प्रयत्नों में आत्मनिर्भर हो जायें

और हमें दूसरे राष्ट्रों का मुंह न देखना पड़ा।

भारत प्रमुख रूप से एक तटवर्ती देश हैं, लेकिन दुख की बात यह है कि हमारे नेताओं ने इस बात को समझा नहीं है। समुद्र का प्राकृतिक पदार्थों की दृष्टि से सबसे अधिक समृद्ध क्षेत्र कोंटीनेंटल शेल्फ है, जो धीरे धीरे गहराई की ओर जाता है। यह तट से लेकर वहां तक है जहां से समुद्र की गहराई एकदम शुरू हो जाती है। यह शेल्फ 200 मीटर चौड़ा है और भारत में इसकी चौड़ाई तटवर्ती प्रदेशों में पांच किलोमीटर से लेकर 100 किलोमीटर तक है। यदि हम भारत के कोंटीनेंटल शेल्फ का प्रयोग कर सकें, तो भारत की सीमाओं में तमिलनाडु और केरल के मिले जुले क्षेत्र जितना क्षेत्र और जुड़ जाएगा।

समुद्र में उपलब्ध संसाधन मुख्य रूप से चार वर्गों में आते हैं—(1) सबसे प्राचीन और अब तक सबसे महत्त्वपूर्ण तो वे खाद्य पदार्थ हैं जो मानवों के खाने या पशुओं के चारे के रूप में समुद्र से उपलब्ध हो सकते हैं (2) नमक सहित कई मूल्यवान रसायन हैं जो समुद्र के जल से प्राप्त होते हैं (3) पैट्रोलियम, कच्चा लोहा, हीरे और कई अन्य रसायन और खनिज पदार्थ समुद्र तल से उपलब्ध हो सकते हैं (4) समुद्र में उठने वाले ज्वार भाटे, लहरों और ऊष्मा से भी आर्थिक लाभ उठाया जा सकता है।

खाद्य पदार्थों के स्त्रोत के रूप में

समुद्र में ऐसे खाद्य पदार्थों का असीम स्त्रोत है जिनमें प्रोटीन बहुत अधिक मात्रा में होती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य तथा कृषि संगठन के अनुमान के अनुसार 1977 में सारे विश्व में 7.3 करोड़ टन मछलियां पकड़ी गईं, यद्यपि इससे भी अधिक पकड़ी जा सकती थीं। इसमें भारत का हिस्सा 15 लाख टन से भी कम था जो सारे विश्व के आंकड़ों को देखते हुए बड़ी नगण्य मात्रा है। खाद्य तथा कृषि संगठन के विशेषज्ञ और हमारे अपने वैज्ञानिकों का अनुमान यह है कि भारत जितनी मछलियां पकड़ता है, उससे दस गुनी भी पकड़ ले तो मछलियों का भंडार समाप्त नहीं होगा। इतनी अधिक मछलियां पकड़ने के लिए नयी तकनीकों की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। हमारे 60 प्रतिशत से अधिक लोग मछली और समुद्र में उपलब्ध अन्य खाद्य पदार्थों को स्वीकार करते हैं। यदि हम अधिक मछलियां पकड़ने लगें तो हमारे देश में व्याप्त प्रोटीन की गंभीर कमी दूर हो सकती है।

पिछले 30 वर्षों में मछली पकड़ने के उपक्रम का उल्लेखनीय पहलू यह है कि पकड़ी गई मछलियों की मात्रा बहुत बढ़ गई है। सन् 1948 में 1.9 करोड़

टन मछलियां पकड़ी गईं और 1977 में 7.3 करोड़ टन। इसकी तुलना बढ़ती हुई जनसंख्या या पृथ्वी पर खाद्यान्नों की बढ़ती हुई पैदावार के साथ की जाए तो यह वृद्धि बहुत अधिक है। भारत में भी 1951 के बाद से अधिक मात्रा में मछलियां पकड़ी जाने लगीं।

हमारे देश में समुद्र से मोलस्क और क्रस्टेशियाई जीव भी उपलब्ध किए जा सकते हैं। आजकल इनकी अधिकतर मात्रा निर्यात की जा रही है। कई देशों में इन जीवों को पाला जाता है। लेकिन हम केवल उन्हें समुद्र से पकड़कर ही संतुष्ट हो जाते हैं। हमारे तटों पर असंख्य संकरी खाड़ियां और उप-सागर हैं जहां पर बड़े पैमाने पर मोलस्क और क्रस्टेशियाई जीव पाले जा सकते हैं। फ्रांस और अन्य देशों में यह देखा गया है कि जब ऐसे जीवों को पाला जाता है तो उनकी प्रति हैक्टेअर उत्पादकता उपजाऊ भूमि में धान या गेहूं की उत्पादकता की तुलना में दस गुनी होती है। इस संदर्भ में यह भी याद रखना चाहिए कि समुद्र से प्राप्त खाद्य पदार्थों में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है।

समुद्र में उपलब्ध शैवाल (काई) भी खाद्य का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है जिसकी हम अब तक उपेक्षा करते आए हैं। शैवाल में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसे आसानी से समुद्र से इकट्ठा किया जा सकता है और खाने के लिए तैयार किया जा सकता है। हमारे देश में जो लोग परंपरा से शाकाहारी हैं वे इसे स्वीकार कर सकते हैं। यह देखा गया है कि कुछ प्रकार के शैवाल में अच्छी किस्म के चाकलेट की तुलना में अधिक ऊर्जा होती है और तट के पास संकरी खाड़ियों में शैवाल की खेती करने से बहुत लाभ हो सकता है। कुछ प्रकार के शैवालों में औषधियां और आयोडीन जैसे मूल्यवान तत्व होते हैं और कुछ शैवाल ऐसे हैं जो उद्योगों में कई प्रकार से काम आ सकते हैं।

और फिर समुद्र में मछलियों के विशाल भंडार भी कुछ क्षेत्रों में मौजूद हैं। उदाहरण के लिए काटीनेंटल शेल्फ के क्षेत्र के परे ट्यूना, बिल और सैल नाम की मछलियों के क्षेत्र हैं। हमारे गहरे समुद्रों और हिंद महासागर में मछलियों के कितने ही भंडार हैं इस बात को जापान के लोगों ने भलीभांति समझा है और वे इस क्षेत्र में आकर मछलियां पकड़ते हैं। समुद्र में मछलियों का पकड़ना इस बात पर निर्भर करता है कि हम यह जानते हैं या नहीं कि मछलियों के झुंड कहां कहां होते हैं और उन्हें पकड़ने में हम कितनी अच्छी तकनीकों का आविष्कार कर सकते हैं। आजकल मछलियां पकड़ने की नावें और उपकरण उतने ही पुराने हैं, जितना कि बैलों द्वारा खींचा जाने वाला हल। इसलिए हमारे मछुआरे तट से 15 से लेकर

20 किलोमीटर दूर तक ही जाते हैं और उससे आगे नहीं जा पाते।

लेकिन हाल ही में तटवर्ती राज्यों के मछली विभागों ने मछली पकड़ने के उपकरणों को आधुनिक बनाने में बहुत सा विकास कार्य किया है। लेकिन इन उपकरणों की सहायता से हम उतनी मछलियां नहीं पकड़ पाए जितनी कि पकड़ सकते थे। इसका कारण मुख्य रूप से यह है कि अनुसंधान पर आधारित वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव है।

समुद्री जल से रसायन

समुद्र का जल हमारे अत्यंत समृद्ध साधनों में से एक है। इसमें 40 से अधिक तत्व होते हैं जो निकाले जा सकते हैं। कागज बनाने के काम में आने वाले गूदे, रसायनों और कांच, साबुन और बारूद में सोडियम सल्फेट काम आता है जो बहुत बड़ी मात्रा में समुद्र के जल से निकाला जाता है। कई देशों में बड़े बड़े कारखाने हैं जहां समुद्री जल से मैग्नीशियम और मैग्नीशियम के सम्मिश्रण निकालने का काम चल रहा है। सच तो यह है कि जब समुद्री जल से मैग्नीशियम निकालने की तकनीक का विकास हुआ तो यह बहुत सस्ता हो गया। हल्के वजन की यह धातु विमान उद्योग के लिए बहुत महत्त्व की है और हमारे देश के आधुनिकीकरण में बहुत बड़ा योगदान दे सकती है। भारत में समुद्री जल से नमक निकालने के बाद उसमें बच रहे तत्व 'बिटर्न' की बहुत बड़ी मात्रा रहती है जो यूं ही बेकार चली जाती है। इस मात्रा से प्रतिवर्ष चार लाख टन मैग्नीशियम सल्फेट, 70 हजार टन पोटाशियम सल्फेट और सात हजार टन ब्रोमीन निकाला जा सकता है।

समुद्र के नीचे खनिज पदार्थ

भारत के लिए समुद्र तल एक अजनबी प्रदेश रहा है। अभी तक यह पता नहीं चल पाया कि हमारे तटों के पास शेल्फ के क्षेत्र में कितना अधिक तेल उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त समुद्र के तल पर प्याज की शक्ल के छोटे छोटे गोले अपार मात्रा में पड़े हैं जिनमें मैग्नीज, लोहा, तांबा, कोबाल्ट, निकल, और फास्फोरस जैसे अन्य खनिज पदार्थ होते हैं। मलेशिया, दक्षिणी अफ्रीका, जापान और कैलीफोर्निया के तटों के पास समुद्र से रांगा, हीरे, लोहा और सोना निकाला जाता है। विकसित देश न केवल समुद्र तल से इन बहुमूल्य पदार्थों को निकालने की योजनाएं बना चुके हैं बल्कि यह भी प्रयत्न कर रहे हैं कि कोंटीनेंटल शेल्फों पर समुद्र के भीतर मानवों के रहने की व्यवस्था की जाय, जहां पर वे वैसे ही घूम फिर और काम

कर सकें, जैसे कि पृथ्वी पर करते हैं। यह भी संभव है कि जल के नीचे कारखाने लगा दिए जाएं, जहां से उनका तैयार माल पाइपों के माध्यम से समुद्र से बाहर आ सके।

समुद्र की ऊर्जा का प्रयोग

समुद्र के ज्वार भाटे और लहरों में जो ऊर्जा छिपी हुई है तथा जल की विभिन्न तहों में तापमान की विभिन्नता के कारण जो ऊर्जा उत्पन्न होती है वह असीमित है। पृथ्वी पर ऐसी ऊर्जा कहीं भी उपलब्ध नहीं। फ्रांस में एक बहुत बड़ा पनबिजली केंद्र बनाया गया है जो रांस नदी में उठने वाले ज्वार की ऊर्जा से चलता है। इस केंद्र में प्रति वर्ष 80 करोड़ किलोवाट बिजली पैदा होती है। रूस ने किसाल्या ग्यूबा नाम के स्थान पर ज्वार की शक्ति से चलने वाला एक बिजली घर 1968 में बनाया जहां 440 किलोवाट बिजली पैदा होती है। भारत में सौराष्ट्र के तट पर दिन में दो बार ज्वार आता है जिसमें छह फुट ऊंचा जल तट पर फैल जाता है। फिर वही जल भाटे के रूप में समुद्र में लौट जाता है। अगर इस ज्वार भाटे के जल की ऊर्जा का प्रयोग किया जाय तो इतनी बिजली पैदा की जा सकती है कि सारे उत्तर-पश्चिमी भारत का सर्वात्तोंमुखी विकास किया जा सके।

यह बात तो सर्वविदित है कि समुद्र के जल की भिन्न भिन्न तहों में तापमान अलग अलग होता है। तट के पास, और बहुधा इसके समानांतर क्षेत्र में समुद्र में ऐसे क्षेत्र हैं जहां ऊपर की तहों में जल गर्म होता है और उसके नीचे ठंडा। गर्म जल, जिसका तापमान 30 और 32 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है। अधिक दबाव पर यह गर्म जल बिना और गर्म किए उबलने लगता है और इससे बनने वाली भाप कारखानों के चलाने के काम आती है। उसके बाद इस भाप को ठंडा कर लिया जाता है। उसका तरीका यह है कि उसे ऐसी नालियों से गुजारा जाता है जिनके आसपास समुद्र की गहराई से निकाला हुआ ठंडा जल (जिसका तापमान 15 और 16 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है) होता है। इस प्रकार यह भाप फिर जल बन जाती है जो पीने के काम में लाया जा सकता है। भाप के फिर जल बन जाने के बाद जो खारा तरल पदार्थ बच जाता है उसमें से कई मूल्यवान रसायन प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार के बहुत से कारखाने भारत के पूर्वी और दक्षिणी तटों पर लगाए जा सकते हैं और उनसे बहुत लाभ हो सकता है। अगर ऐसा किया जाय तो सारे तटीय क्षेत्रों में विकास की एक नयी लहर चल पड़ेगी और उद्योगों की महान प्रगति होगी। समुद्र में इस प्रकार के कारखाने का माडल क्यूबा के पास

1930 में बनाया गया था। विश्व के विभिन्न भागों में तट पर स्थित ऊष्ण ऊर्जा परिवर्तन के सिद्धांत पर आधारित बिजली के कारखाने बड़े पैमाने पर लगाने की योजना बन रही है। कहा जाता है कि इन कारखानों में जो बिजली बनती है वह सबसे सस्ती होती है।

समुद्र से ऊर्जा प्राप्त करने के और भी कई स्त्रोत हैं। उनमें से एक है समुद्र में उठने वाली लहरें। इनसे बिजली बनाने के लिए हवा के दबाव से चलने वाले लहरों द्वारा नियंत्रित टर्बाइन (बिजली बनाने के उपकरण) 1960 के बाद महासागरों के विभिन्न क्षेत्रों में लगाए जा चुके हैं। इनकी क्षमता 90 और 120 वाट के बीच है। इनका प्रयोग आमतौर पर समुद्र में दिग्सूचक बोयों को बिजली पहुंचाने के लिए किया जाता है। लेकिन इस प्रकार बनायी गई बिजली का प्रयोग छोटे आकार के कारखानों में भी किया जा सकता है जो समुद्र पर कंक्रीट से बने तैरते हुए मंचों पर लगाए जा सकते हैं। समुद्र में चलने वाली हवा और उसके जल की धाराओं की ऊर्जा का प्रयोग भी टर्बाइन चलाने और बिजली पैदा करने के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार समुद्री जल में नमक की विभिन्नता के आधार पर भी बिजली उत्पन्न करने वाले कारखाने लगाए जा सकते हैं जैसे कि जल के तापमान की विभिन्नता के आधार पर बिजली बनाने वाले उपकरण हैं। लेकिन इन सब के लिए बहुत अधिक तकनीकी प्रगति आवश्यक है जो शायद और कई साल तक संभव नहीं होगी।

आवश्यक कार्रवाई

यद्यपि भारत एक महत्त्वपूर्ण समुद्रीय राष्ट्र है लेकिन दूसरे देशों की तुलना में भारतीयों को समुद्र का बहुत कम ध्यान है और न वे उसे अधिक महत्त्व देते हैं। जो लोग समुद्र तट के पास रहते हैं, वे भी समुद्र और उसकी समस्याओं में कोई दिलचस्पी नहीं लेते। इसका अपवाद अगर हैं तो मछुआरे जिन्हें समाज तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। इसका एक कारण तो शायद यह हो सकता है कि भारत में प्राचीन काल से यह परंपरा चली आ रही है कि समुद्र में यात्रा करना निषिद्ध था। आज भी बहुधा समुद्री यात्रा को आचरण के पुराने नियमों का उल्लंघन माना जाता है। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि हमें समुद्रों का समुचित ज्ञान नहीं है और न यह पता है कि समुद्र से विकास के कितने अवसर उपलब्ध होते हैं। अब समय आ गया है कि हमारे शिक्षा शास्त्रियों को इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए। हमें अपने बच्चों को यह सिखाना चाहिए कि देश प्रेम के साथ साथ

अपने देश के आसपास के समुद्रों से भी प्यार करें। हमें युवा पीढ़ी को प्रोत्साहन देना चाहिए कि वह न केवल आमोद प्रमोद के लिए बल्कि आजीविकां के लिए भी समुद्रों की ओर प्रवृत्त हों। अब जब कि सारे विश्व के देश इस बात पर सहमत हैं कि तट से 250 किलोमीटर दूर तक का क्षेत्र प्रत्येक देश का आर्थिक क्षेत्र है, तब हमें यह अवसर प्राप्त हो गया है कि हम अपने कार्यकलाप को उस क्षेत्र तक फैला दें। हमें समुद्रों पर विजय पाने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। समुद्र में हम जो कुछ कर पायेंगे उसी के आधार पर विश्व में हमारा सम्मान बढ़ेगा। ऐसा करके ही हम अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए विकास के अवसर उपलब्ध करा सकते हैं।

यद्यपि हमारे देश का क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल की तुलना में केवल ढाई प्रतिशत है, संसार की कुल जनसंख्या का 15 प्रतिशत भारत में रहता है। इस कारण भारत के लिए उसकी पृथ्वी की तुलना में समुद्र का अधिक महत्त्व होना चाहिए। अमरीका के स्वर्गीय राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी ने एक बार कहा था कि 'हो सकता है कि हमारा अस्तित्व समुद्र पर ही निर्भर करे।' यह बात विश्व के किसी भी देश की तुलना में भारत पर अधिक लागू होती है।

अक्तूबर, 1967 में अमरीका का समुद्र के भीतर प्रवेश करने वाला अनुसंधान यान **एल्यूमीनोट** समुद्र में उतारा गया तो उसमें फ्लोरिडा राज्य के राज्यपाल क्लाड कर्क भी थे। मियामी से (जो फ्लोरिडा की राजधानी है) 15 मील दूर श्री कर्क एक्वालंग पहने हुए इस यान से निकले और उन्होंने समुद्र के तल पर अपने राज्य और अमरीका के राष्ट्रीय ध्वज गाड़ दिए। जब वे तट पर लौटे तो कुछ पत्रकार उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने उनसे कहा : "जब आप समुद्र तल की बात करते हैं तो राष्ट्रीय सीमाओं को भूल जाइए। प्रश्न यह है कि उस पर सबसे पहले कौन अधिकार करता है। स्पेन के लोगों ने भी तो यही किया था। जहां जाते यह घोषणा कर देते कि यह हमारा क्षेत्र है और उस पर अधिकार कर लेते थे। अमरीका को भी यही करना चाहिए।"

इसमें संदेह नहीं कि हमें ऐसा नहीं करना पड़ेगा। हमारे पास इतना बड़ा क्षेत्र है कि जहां से हम समुद्र तल में पड़े पदार्थों को निकाल सकते हैं। यदि हम उस पर ही निर्भर करें तो काफी होगा। यदि हम अपने देश के आसपास के समुद्र में पड़े पदार्थों को निकाल सकें और उनका समुचित प्रयोग कर सकें तो भारत का भविष्य बड़ा उज्जवल होगा। इस चुनौती भरे लेकिन लाभप्रद काम में लगने की जिम्मेदारी राष्ट्र के युवा वर्ग पर है। उनका भाग्य समुद्र के तट पर ही आधारित है।

अनुक्रमणिका

■ ■

पैरामाउंट ग्राफिक्स प्रा.लि. ११००२० द्वारा मुद्रित